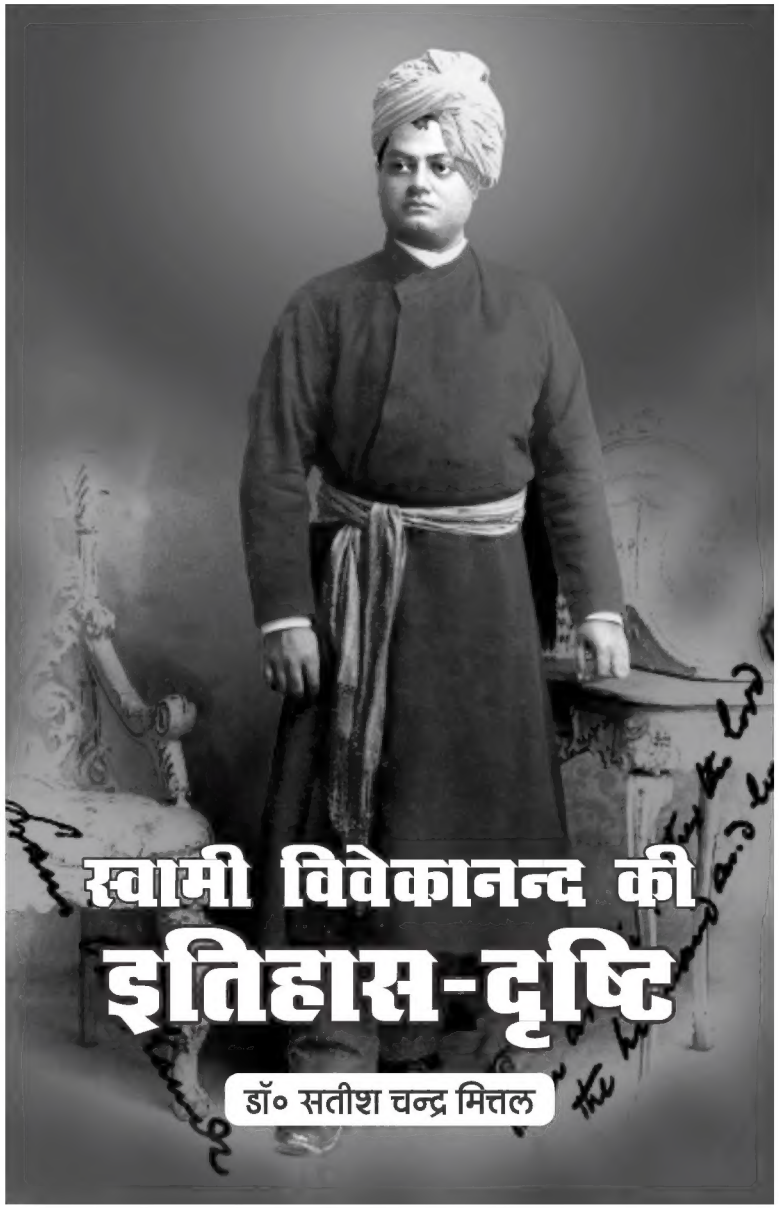
स्वामी विवेकानन्द की
इतिहास-दृष्टि
डॉ० सतीश चन्द्र मित्तल

स्वामी विवेकानन्द की इतिहास-दृष्टि

डॉ० सतीश चन्द्र मित्तल

प्रकाशन-विभाग
अखिल भारतीय इतिहास-संकलन योजना
नयी दिल्ली-110 055

'SWĀMĪ VIVEKĀNANDA KĪ ITIHĀSA DRIŚTI'
By Dr. Satish Chandra Mittal

Published by:
PUBLICATIONS DEPARTMENT
Akhila Bhāratīya Itihāsa Saṁkalana Yojanā
Baba Sahab Apte Smriti Bhawan, 'Keshav Kunj',
Jhandewalan, New Delhi-110 055
Ph.: 011-23675667
e-mail: abisy84@gmail.com
© **Copyright :** Publisher
First Edition : Kaliyugabda 5114, i.e. 2012 AD
Laser Typesetting & Cover Design by:
Gunjan Aggrawala
Printed at: Graphic World, 1659 Dakhnisarai Street,
Dariyaganj, New Delhi-110055
Price: ₹ 50/-

प्रकाशक :
प्रकाशन-विभाग
अखिल भारतीय इतिहास-संकलन योजना
बाबा साहेब आपटे स्मृति भवन, 'केशव कुञ्ज',
झण्डेवालान, नयी दिल्ली-110 055
दूरभाष : 011-23675667
ई-मेल : abisy84@gmail.com
© **सर्वाधिकार :** प्रकाशकाधीन
संस्करण : प्रथम, कलियुगाब्द 5114, सन् 2012 ई०
लेज़र टाईपसेटिंग एवं आवरण-सज्जा : गुंजन अग्रवाल
मुद्रक : ग्राफ़िक वर्ल्ड, 1659, दखनीराय स्ट्रीट, दरियागंज,
नयी दिल्ली-110 002
: ₹ 50/-मूल्य

ISBN 978-93-82424-02-4
9789382 424024

आवरण-परिचय : विश्वविख्यात शिकागो-भंगिमा। सितम्बर, 1893 ई० में विश्वविख्यात होने के बाद खींची गई तस्वीर। फ़ोटोग्राफ़र टॉमस हैरिसन का स्टूडियो भी शिकागो के सेन्ट्रल म्यूज़िक हॉल में स्थित था। कैबिनेट कार्ड पोट्रेट-शृंखला में सात तस्वीरें खींची गई थीं। इस फोटो की पाँच प्रतियों पर स्वामी जी ने हस्ताक्षर भी किए थे।

भूमिका

भारतीय-दर्शन एवं अध्यात्म की चैतन्य, मूर्तिमन्त स्वरूप थे स्वामी विवेकानन्द; जिनके मुखमण्डल पर तेज, वाणी में ओज और हृदय में जिज्ञासाओं का महासागर विद्यमान था। पश्चिम की भौतिकता से ओतप्रोत जनमानस को भारत की आध्यात्मिकता के स्वरूप से झकझोरनेवाले वे महामानव थे। वे एक ऐसे विश्व-वरेण्य, वीर संन्यासी थे, जिन्होंने भारतवर्ष की प्राचीन वेदांतिक परम्परा के अधिष्ठान पर वर्तमान भारत को खड़ा किया। मात्र 39 वर्ष, 5 मास और 23 दिन की अल्पायु में उन्होंने चिरसमाधि प्राप्त की, परन्तु इस अत्यल्प काल में ही उन्होंने वर्तमान भारत की एक सुदृढ़ आधारशिला प्रतिष्ठित की। भारतीय-इतिहास के इस संकटमय संक्रान्तिकाल में, जिस महापुरुष ने धर्म, समाज और राष्ट्र में समष्टि-मुक्ति के महान् आदर्श को प्रतिष्ठित किया, आज उनके आदर्श को घर-घर पहुँचाने की आवश्यकता प्रबल रूप से महसूस हो रही है।

कलकत्ते (वर्तमान कोलकाता) के 3, शिमलापल्ली (सम्प्रति 3, गौड़मोहन मुखर्जी स्ट्रीट) नामक मोहल्ले में पौष कृष्ण सप्तमी, मकर संक्रान्ति, विक्रम संवत् 1920, कलियुगाब्द 4965, तदनुसार दिनांक 12 जनवरी, 1863 ई०, सोमवार को प्रातः 6 बजकर 33 मिनट, 33 सैकेण्ड पर श्री विश्वनाथ दत्त और भुवनेश्वरी देवी की छठी सन्तान विवेकानन्द (मूल नाम नरेन्द्रनाथ दत्त) का जन्म हुआ था। श्री विश्वनाथ दत्त कलकत्ता उच्च न्यायालय के विख्यात अधिवक्ता थे।

नरेन्द्रनाथ वास्तव में नरकुल के इन्द्र थे। माँ के मुँह से *रामायण* एवं *महाभारत* की कथाएँ सुनना उन्हें बहुत प्रिय था। माता भुवनेश्वरी अपने प्यारे पुत्र को गोद में बिठाकर सीताराम की कहानी सुनाती हुई अपने अवकाश का समय बिताया करती थीं। दत्त-भवन में प्रायः प्रतिदिन दोपहर को *रामायण* एवं

महाभारत की कथा होती थी। कभी कोई वृद्ध महिला पाठ करती, कभी भुवनेश्वरी देवी स्वयं पढ़तीं। इस छोटी-सी महिला-मण्डली में सुदर्शनीय नरेन्द्र शान्त होकर बैठे रहते। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुराणों की कथाओं का नरेन्द्र के मन पर गम्भीर प्रभाव पड़ा था।

सन् 1871 में गृहशिक्षक से प्राथमिक शिक्षा समाप्त होने पर नरेन्द्र पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (1820-1891) द्वारा संस्थापित 'मेट्रोपॉलिटन इंस्टीट्यूशन' (सम्प्रति विद्यासागर कॉलेज़) में भेजे गये, जहाँ कक्षा 2 में उनका नामांकन हुआ। सन् 1877 ई० में, जब वह कक्षा 8 के छात्र थे, उनके पिता श्री विश्वनाथ दत्त अपने पेशे के काम से संयुक्त प्रान्त के रायपुर (वर्तमान छत्तीसगढ़ प्रान्त की राजधानी) में रह रहे थे। जब श्री विश्वनाथ दत्त ने देखा कि उन्हें रायपुर में काफ़ी समय रहना पड़ेगा, तब उन्होंने अपने परिवार को भी रायपुर बुला लिया। नरेन्द्रनाथ अपनी माँ, अनुज महेन्द्र और बहन जोगेन्द्रबाला के साथ कलकत्ते से रायपुर के लिए रवाना हुए। चार बैलगाड़ियों में करीब एक महीने की यात्रा करते हुए वे लोग रायपुर पहुँचे थे। उनके साथ रायबहादुर भूतनाथ डे (1850-1903) और उनके पुत्र श्री हरिनाथ डे[1] (1877-1911) भी थे । एकसाथ यात्रा करके उन्होंने रायपुर के 'डे-भवन' में निवास किया था।[2]

रायपुर में उस समय अच्छा विद्यालय नहीं था, इसलिए पिता श्री विश्वनाथ स्वयं नरेन्द्र को पढ़ाते थे। पुत्र की बुद्धि के विकास के लिए पिता अनेक विषयों की चर्चा करते। यहाँ तक कि पुत्र के साथ तर्क में भी प्रवृत्त हो जाते और क्षेत्र-विशेष में अपनी हार स्वीकार करने में कुण्ठित न होते। उन दिनों विश्वनाथ बाबू के घर में अनेक विद्वानों का समागम हुआ करता तथा विविध सांस्कृतिक विषयों पर चर्चाएँ चला करतीं। नरेन्द्रनाथ बड़े ध्यान से सब सुना करते और अवसर पाकर किसी विषय पर अपना मंतव्य भी प्रकट कर देते थे।

---

1. हरिनाथ डे को भारत का महानतम भाषाविद् माना जाता है। उन्होंने अपने जीवन के 34 वर्षों में 28 विदेशी और 8 भारतीय (कुल 36) भाषाएँ सीखी थीं। रायपुर के 'डे-भवन' में, जहाँ विवेकानन्द ठहरे थे, हरिनाथ डे का शिलालेख लगा हुआ है, जिसमें उनके द्वारा सीखी 36 भाषाओं की सूची दी हुई है।
2. महेन्द्रनाथ दत्त, *'स्वामी विवेकानन्द के जीवन की घटनावली'* (बंग्ला), खण्ड 1, पृ० 9

उनकी बुद्धिमत्ता तथा ज्ञान को देखकर बड़े-बूढ़े चमत्कृत हो उठते, इसलिए कोई भी उन्हें छोटा समझकर उनकी अवहेलना नहीं करता था। एक दिन ऐसी ही चर्चा के दौरान नरेन्द्र ने बंगला के एक ख्यातनामा लेखक के गद्य-पद्य से अनेक उद्धरण देकर अपने पिता के एक सुपरिचित मित्र को इतना आश्चर्यचकित कर दिया कि वह प्रशंसा करते हुए बोल पड़े, "बेटा, किसी-न-किसी दिन तुम्हारा नाम हम अवश्य सुनेंगे।" कहने की आवश्यकता नहीं कि यह मात्र स्नेहसिक्त अत्युक्ति नहीं थी, वह तो एक अत्यन्त सत्य भविष्यवाणी थी। नरेन्द्र बंग-साहित्य में अपनी चिरस्थायी स्मृति रख गये।

नरेन्द्र बचपन से ही कुश्ती का अभ्यास करते थे। 'हिंदू-मेला' के प्रवर्तक नवगोपाल मित्र द्वारा स्थापित व्यायामशाला में वह भारतीय और पाश्चात्य- दोनों शैलियों में नियमित व्यायाम करते थे। यौवन के प्रारम्भ में बॉक्सिंग में सर्वप्रथम होने पर उन्हें चाँदी की बनी हुई तितली ईनाम में मिली थी। छात्र-खिलाड़ी के रूप में उन्होंने क्रिकेट में काफ़ी नाम कमाया था। श्री विश्वनाथ दत्त रसोई अच्छी बना लेते थे। रायपुर में रहते समय नरेन्द्र ने तरह-तरह के स्वादिष्ट व्यंजन और भोजन बनाना सीख लिया था और वह आजीवन पाकशास्त्र-प्रेमी रहे। बड़े होने पर भी बहुधा तरह-तरह के भोजन बनाकर स्वामी विवेकानन्द आग्रह के साथ अपने शिष्यों को खिलाते समय आनन्द का अनुभव करते थे। रायपुर में उन्होंने शतरंज खेलना भी सीख लिया तथा अच्छे खिलाड़ियों के साथ वह होड़ भी लगा सकते थे।[1] फिर, रायपुर में ही विश्वनाथ बाबू ने नरेन्द्र को संगीत की पहली शिक्षा दी। श्री विश्वनाथ स्वयं इस विद्या में पारंगत थे और उन्होंने इस विषय में नरेन्द्र की अभिरुचि ताड़ ली थी। नरेन्द्र का कण्ठ बड़ा ही सुरीला था, जिससे वह आगे चलकर एक सिद्धहस्त गायक बने थे।[2]

सन् 1879 ई० में कलकत्ता लौट आने पर मेट्रोपॉलिटन इंस्टीट्यूशन में एंट्रेंस (प्रवेशिका) श्रेणी में भर्ती होने में दो वर्षों की अनुपस्थिति के कारण अड़चन

1. स्वामी गम्भीरानन्द, *'युगनायक विवेकानन्द'*, बंगला, प्रथम खण्ड, कलकत्ता, पृ० 55-57
2. *'दि लाइफ़ ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द'*, अद्वैत आश्रम, मायावती, भाग 1, पंचम संस्करण, पृ० 42-43

पैदा हो गया। फलतः नरेन्द्र दो वर्षों की पाठ्य-पुस्तकें एक ही वर्ष में समाप्तकर परीक्षा के लिए तैयार हुए, और जब वह प्रशंसा के साथ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए (क्योंकि एकमात्र नरेन्द्र ने ही प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होकर स्कूल के गौरव की रक्षा की थी), तो स्कूल के शिक्षक सहित घर-परिवार एवं सभी लोग उनकी सफलता से आनन्दित हुए थे। पिता ने उपहारस्वरूप उन्हें चाँदी की एक सुन्दर घड़ी भेंट की थी।

जनवरी, 1880 ई० में नरेन्द्रनाथ जब कलकत्ता के प्रेसिडेंसी कॉलेज़ (सम्प्रति प्रेसिडेंसी यूनिवर्सिटी) के कला-अनुभाग में प्रविष्ट हुए, उस समय उनकी अवस्था 17 वर्ष की थी। जनरल असेम्बलीज़ इंस्टीट्यूशन (सम्प्रति स्कॉटिश चर्च कॉलेज़) से एफ़्०ए० (हायर सेकेण्ड्री, कक्षा 12) की परीक्षा से पूर्व ही उन्होंने पाश्चात्य दर्शनशास्त्र, विशेषकर 'सन्देहवाद' (Skepticism) का ज्ञान प्राप्त कर लिया था और बड़े-बड़े दार्शनिकों की पुस्तकों का भी अध्ययन कर लिया था। बढ़ती हुई ज्ञान-पिपासा लेकर नरेन्द्र जितने ही अग्रसर हुए, उतना ही वह समझने लगे कि परम सत्य को प्राप्त करना हो, तो केवल विचार-बुद्धि की सहायता से सूक्ष्म दार्शनिक-तत्त्वों की मीमांसा में लगे रहने से ही काम नहीं चलेगा। ब्राह्मसमाज में सम्मिलित होकर भी उपासना के विषय में वह समाज के दूसरे सदस्यों से सहमत न हो सके। बचपन से ही वह ध्यान में डूब जाते थे। यही नहीं, उन्होंने निरामिष परिमित भोजन, भूमि पर शयन, सफ़ेद धोती और चादर की वेशभूषा आदि बाह्य कठोरता का अवलम्बन किया। वह अपने मकान के पास ही अपनी मातामही के मकान के एक कमरे में एकान्त अध्ययन, संगीत आदि की चर्चा करने के बाद शेष समय साधना और भजन में व्यतीत करते थे।

कलकत्ते के सुरेन्द्रनाथ मित्र एक दिन अपने घर स्वामी रामकृष्ण परमहंस को ले आए और एक आनन्दोत्सव का आयोजन किया। कोई अच्छा गायक न मिलने पर उन्होंने अपने पड़ोसी नरेन्द्र को बुला लिया। इस तरह नवम्बर, 1881 ई० में श्रीरामकृष्ण से नरेन्द्रनाथ का प्रथम साक्षात्कार हुआ। परमहंस ने उन्हें दक्षिणेश्वर आने का निमन्त्रण दिया। नरेन्द्र अपने पिता के मित्र डॉ० रामचन्द्र दत्त और जनरल असेम्बलीज़ इंस्टीट्यूशन के प्राचार्य रेवरेण्ड डॉ० विलियम हेस्टी (1842-1903) की सलाह पर एक दिन दो-चार मित्रों के साथ

दक्षिणेश्वर गये। नरेन्द्र को देखते ही श्रीरामकृष्ण उनके साथ चिर-परिचित की तरह सरल भाषा में बात करने लगे और एकान्त में ले जाकर कहा, "मैं कब से तुम्हारी बाट देख रहा था, विषयी लोगों से बात करते-करते मैं ऊब गया हूँ, तुम्हारे समान सच्चे त्यागी से बातें करके मुझे शान्ति मिलेगी।" उनकी बातें सुनकर नरेन्द्र अवाक् रह गये। परमहंस कहते गए, "मैं जानता हूँ, तुम सप्तर्षिमण्डल के ऋषि हो, नर के रूप में नारायण हो, जीवों के कल्याण की भावना से तुमने देह धारण किया है।" श्रीरामकृष्ण का अपूर्व त्याग, शिशु की तरह अभिमानशून्य, सरल व्यवहार और सबसे बढ़कर उनके गम्भीर निष्काम प्रेम ने नरेन्द्रनाथ के हृदय में थोड़े ही दिनों में काफ़ी प्रभाव डाल दिया। श्रीरामकृष्ण पहले ही समझ गए थे कि इस युवक को समय आने पर जगत् के करोड़ों धर्म-पिपासुओं की आध्यात्मिक तृष्णा मिटानी होगी, पाश्चात्य सभ्यता के गर्व से दिग्भ्रान्त भारतवासियों को सनातन हिंदू-धर्म के पथ पर लौटने का आह्वान करना होगा। भविष्य की सोचकर श्रीरामकृष्ण उन्हें सर्वमतों के आधारस्वरूप वेदांत में वर्णित साधना-मार्ग में परिचालित करने के लिए प्रयत्न करने लगे। इसी बीच विश्वनाथ दत्त को नरेन्द्र की ज़िद के कारण उनके विवाह का प्रयास भी त्यागना पड़ा।

सन् 1885 ई० में जब श्रीरामकृष्ण गले के कर्करोग से पीड़ित हुए, तो उन्हें काशीपुर (कलकत्ता) के एक बगीचेवाले मकान में लाया गया। यह उद्यान-भवन रोगी-निवास या चिकित्सागृह-मात्र न रहकर साधना, भजन, शास्त्रपाठ, दर्शन, इतिहास आदि की चर्चा का केन्द्र बन गया। श्रीरामकृष्ण के प्रेम-सुधा की मस्ती में नरेन्द्र सहित 12 गुरुभाइयों के जीवन के सर्वश्रेष्ठ आनन्दमय दिन इसी पवित्र तीर्थ में बीते। एक दिन श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्रनाथ को 'अष्टसिद्धि'[1] देने की बात कहकर कहा, "यह कभी मेरे काम तो नहीं आया, तुम

1. *मार्कण्डेयमहापुराण* और *ब्रह्मवैवर्तमहापुराण* में योग के द्वारा प्राप्त होनेवाली अष्टसिद्धियों का उल्लेख आया है—

'अणिमा लघिमा गरिमा प्राप्तिः प्राकाम्यंमहिमा तथा।
ईशित्वं च वशित्वं च सर्वकामावशायिताः।।'

अर्थात्, अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, इशित्व और वशित्व।

'अणिमा' वह सिद्धि है, जिससे युक्त व्यक्ति गुप्त होकर कहीं भी पहुँच सकता

इसे ले लो, तुम्हारे काम आयेगा।" लेकिन यह जानकर कि भगवत्प्राप्ति में इससे कोई सहायता नहीं मिलेगी, नरेन्द्र ने अष्टसिद्धियाँ लेने से इंकार कर दिया और 'निर्विकल्प समाधि' के लिए निवेदन किया। बहुत आग्रह के बाद रामकृष्णदेव ने कहा, "अच्छा जा, निर्विकल्प समाधि लगेगी।" एक दिन सायंकाल ध्यान करते-करते नरेन्द्र अप्रत्याशित रूप से निर्विकल्प समाधि में डूब गये। समाधि से लौटने के बाद उन्होंने अनुभव किया कि जगत् के दुःख और दैन्य से पीड़ित मोहभ्रान्त जीवों को स्वयं ज्ञानामृत के पान से परितृप्त होकर उस अमृत का पान सबों को कराने के लिए कहूँगा, मैंने आदित्य के समान देदीप्यमान उस महापुरुष को जान लिया है, जो समस्त अज्ञानान्धकार से परे है। केवल उसे ही जानकर मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है। नरेन्द्र के हृदय की सारी अशान्ति और आकांक्षाओं का अन्त हो गया।

दिनांक 16 अगस्त, 1886, सोमवार को स्वामी रामकृष्ण परमहंस के देहत्याग के कुछ ही दिन बाद नरेन्द्र अपने गुरुदेव के आदर्श की रक्षा के लिए संघबद्ध होने की आवश्यकता समझकर गुरुभाइयों को सदा उत्साह देने लगे। पाश्चात्य दर्शनशास्त्र के ज्ञाता, सन्देहवादी नरेन्द्र में रामकृष्ण के साथ लगातार तर्क करने के फलस्वरूप अद्भुत परिवर्तन आ गया था। जनवरी, 1887 में उन्होंने अपने 11 गुरुभाइयों के साथ संन्यास का व्रत लिया और नरेन्द्रनाथ दत्त से 'स्वामी विविदिशानन्द' अथवा 'स्वामी सच्चिदानन्द' हो गये।[1] सनातन हिंदू-धर्म उनकी दृष्टि में महिमामय, उदार और सार्वभौमिक हो गया। अब वेद उनके लिए

है; 'लघिमा' से व्यक्ति अपने शरीर को काफ़ी छोटा कर सकता है; 'गरिमा' नामक सिद्धि से मनुष्य अपने शरीर को जितना चाहे, उतना भारी बना सकता है; 'प्राप्ति' को प्राप्त व्यक्ति जिस वस्तु की भी अभिलाषा करता है, वह अप्राप्य होने पर भी उसे प्राप्त हो जाती है; 'प्राकाम्य' सिद्धि से संपन्न व्यक्ति जो चाहता है, वही हो जाता है; 'महिमा' सिद्धि से संपन्न व्यक्ति अपने शरीर को विशाल कर सकता है; 'ईशित्व' सिद्धि को प्राप्त व्यक्ति प्रभुत्व और अधिकार प्राप्त करने में सक्षम होता है; 'वशित्व' सिद्धि से संपन्न व्यक्ति किसी भी प्राणी को अपने वश में कर सकता है।

1. दिनांक 21 अप्रैल, 1893 ई० को खेतड़ी-नरेश महाराजा अजीत सिंह बहादुर (शासनकाल : 1870-1901) के अनुरोध पर उन्होंने 'स्वामी विवेकानन्द' नाम धारण किया था।

अपौरुषेय और उपनिषद् के गूढ़ सत्य बोधगम्य हो गये। उन्होंने माना कि मनुष्य गढ़ना ही हमारे जीवन का उद्देश्य है, वृथा विद्या का गर्व छोड़कर ईश्वरानुभूति ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य है।

सन् 1887 ई० के वसन्त में स्वामी विविदिशानन्द पहली बार वराहनगर से बाहर निकले। अगले छः वर्षों तक परिव्राजक के वेश में उन्होंने आसेतु हिमाचल— सम्पूर्ण भारतवर्ष का भ्रमण किया और हिंदू-धर्म और साधना को व्यक्तिवादी, आत्मस्थ, प्रचार-विमुख, एकांत गिरि-कन्दराओं या अरण्यों में ध्यान, धारणा, समाधि के आदर्श को विलग करके, समष्टि के हित में, लोक-कल्याण हेतु समाज के सर्वांगीण विकास के लिए प्रतिबद्ध किया। सदियों की दासता की शृंखला से पीड़ित, आत्मविस्मृत हिंदू-जाति को उन्होंने झकझोरकर जगाया। उनकी प्राणप्रद, शक्ति-संचारिणी वाणी को नव्यभारत ने नये सिरे से आत्मसात् किया।

भ्रमण करने के क्रम में अनेक राजा-महाराजाओं से उनका सम्पर्क हुआ। कितने ही राजा उनके शिष्य बन गये। दिनांक 22-24 दिसम्बर, 1892 को उन्होंने कन्याकुमारी में हिंदू-महासागर के मध्य स्थित एक शिला पर निराहार बैठकर पुरातन और नूतन भारत का एकाग्र चिन्तन किया। वहीं श्रीरामकृष्णदेव ने उन्हें सूक्ष्म शरीर से दर्शन देकर उन्हें पाश्चात्य देशों में जाकर भारतीय-संस्कृति का सन्देश प्रचारित करने का आदेश दिया।

पाश्चात्य जगत् के लिए उन्नीसवीं शती का भारत एक अशिक्षित, पिछड़ा हुआ, कुसंस्कारग्रस्त, हत-गौरव, दास-जाति और साँपों-सपेरों व नंगे-भूखे साधुओं का देश था। हिंदू-धर्म के प्रकृत स्वरूप से पाश्चात्य समाज अपिरिचित था। भारतवर्ष में आए हुए ईसाई-मिशनरीगण धर्म-विद्वेष का गरल चारों ओर फैलाने में लगे थे। स्थिति इतनी दयनीय थी कि एक अंग्रेज़ महिला-मिशनरी ने हिंदू-धर्म को निन्दित करने के लिए योग्य भाषा न पाकर अन्त में अपने मन की ज्वाला को शान्त करने के लिए इन्हीं शब्दों को उचित समझा- "Crystallised immorality and Hinduism are the same things" अर्थात् 'ठोस घनीभूत अनैतिकता और हिंदू-धर्म एक चीज़ है।'

इसी बीच स्वामी जी को मद्रास से निकलनेवाले अंग्रेज़ी समाचार-पत्र *'द हिंदू'* से शिकागो (अमेरिका) में आयोजित होनेवाली 'वर्ल्ड पार्लियामेंट ऑफ़ रिलीज़न' (विश्व धर्म-संसद्) के बारे में जानकारी हुई और जाने की इच्छा हुई।[1] खेतड़ी-रियासत की गरीब जनता से इकट्ठा की गई चन्दे की राशि से वह अमेरिका के लिए रवाना हुए। धर्म-संसद् में पहुँचने के क्रम में उन्हें अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। लेकिन अन्ततः वह धर्म-संसद् के प्रथम दिवस 11 सितम्बर, 1893 ई० को मंच पर पहुँचने में सफल हुए और वहाँ अपने प्रथम उद्बोधन से ही अभूतपूर्व प्रभाव छोड़ा। धर्म-संसद् में उपस्थित अन्य सभी मत-सम्प्रदायाचार्यों की तुलना में स्वामी जी के व्याख्यान से सभी श्रोता अधिक प्रभावित हुए। अमेरिका के सभी समाचार-पत्रों ने मुक्तकण्ठ से स्वामी जी की प्रशंसा की और उन्हें निर्विवाद रूप से **'विश्व धर्म-संसद् का सर्वश्रेष्ठ वक्ता और प्रतिनिधि'** घोषित किया। शिकागो की आम सड़कों, गलियों और चौराहों पर स्वामी जी के बड़े-बड़े पोस्टर, फ़िल्मी-पोस्टरों की तरह सुशोभित होने लगे। अमेरिका-प्रवास के बाद स्वामी जी यूरोप के प्रवास पर भी गए और दोनों महादेशों के नगर-नगर में उनके सहस्रों भाषण हुए। उनका प्रत्येक भाषण नव्य भारत का उद्बोधक मंत्र था। इसी क्रम में उन्होंने अनेक देशों में 'वेदांत-सोसायटी', 'रामकृष्ण मिशन' आदि संस्थानों की भी स्थापना की। सैकड़ों विदेशी उनके शिष्य बन गये।

दिनांक 01 मई, 1897 ई० को उन्होंने कलकत्ते के पास बेलूर नामक गंगा-तटवर्ती ग्राम में रामकृष्ण मिशन का मुख्य केन्द्र स्थापित किया। धीरे-धीरे भारत के सभी प्रमुख नगरों में मिशन के केन्द्र स्थापित हो गये। स्वामी जी ने अवनत भारत को विश्व-मानचित्र पर दुबारा उन्नत करने का संकल्प लिया था। भारतवर्ष को सनातन हिंदू-धर्म की वैद्युतिक शक्ति द्वारा पुनर्संजीवित करना, इसकी आध्यात्मिकता द्वारा समस्त जगत् को जीतना, आध्यात्मिक नींव पर प्रतिष्ठित हिंदू-सभ्यता के प्रकृत रूप को देखने की लुप्त दृष्टिशक्ति को पुनर्जाग्रत्

1. अधिक विस्तार के लिए देखें, *'Swami Vivekananda in the West: New Discoveries'*, Vol. I, by Marie Louise Burke (Sister Gargi), Published by Advaita Ashrama, 1983

करना आदि को भली-भाँति समझते हुए विदेशी-भावयुक्त संस्कारों के पंजे से समाज की रक्षा के लिए हम जिस दिन उद्यत होंगे, उस दिन हमारी जातीय समस्या का समाधान होगा— ऐसा उनका दृढ़ विश्वास था। वस्तुतः वह एक मन्त्रद्रष्टा, उन्नत कल्पनाशील, कवि-हृदय मनीषी थे, जिनकी इच्छा थी 'एक ऐसे धर्म का प्रचार करना, जिससे मनुष्य तैयार होते हों।' ("I want to preach to man-making religion") विदेश-भ्रमण से लौटकर उन्होंने कहा, "अब भारत ही केन्द्र है। जब तक मेरे देश का एक कुत्ता भी भूखा है, मैं मोक्ष की कल्पना नहीं कर सकता। यही धर्म है और इसके अतिरिक्त जो कुछ भी है, वह अधर्म है।" उन्होंने शिक्षाविहीन जड़ता और कुसंस्कार से ग्रस्त भारतवासियों का आह्वान किया- **'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।'**[1] अर्थात् 'उठो, जागो और लक्ष्य की प्राप्ति तक रुको मत।' उन्होंने उपनिषद्-वाक्यों (वेदांत) को अपनी जीवन-शैली में आत्मसात् करने का पाठ पढ़ाया।

कन्याकुमारी में स्वामी जी ने भारत के पतन के जिन कारणों पर चिन्तन किया होगा, उनमें आत्मविस्मृति प्रथम स्थान पर होगी। ऐसा हम इस आधार पर कह सकते हैं कि इसी के उपाय के लिए वह सम्पूर्ण जीवन कार्यरत रहे। उनका पश्चिम-प्रवास व भारत लौटने के बाद, विपरीत स्वास्थ्यदशा के बावजूद पूरे देश का तूफ़ानी दौरा— दोनों ही भारत के स्वत्व व स्वाभिमान के जागरण का माध्यम बने। लगभग एक शताब्दी के ब्रिटिश-शासन ने वह आघात किया था जिसे अबतक के क्रूर आक्रांता नहीं कर पाए थे। भारत के मन को तोड़ने का कार्य ब्रिटिश-लेखकों, इतिहासकारों, शिक्षाविदों, पादरियों, मिशनरियों व शासकों ने सफलतापूर्वक किया था। स्वामी जी प्रताड़ना करते हैं कि यह कौन-सी शिक्षा है जो आपको पहला पाठ पढ़ाती है कि आपके माता-पिता व पूर्वज मूर्ख हैं और आपके आराध्य देवी-देवता शैतान! 50 वर्ष पूर्व जिस देश के बारे में कहा जाता था कि यहाँ के लोग दीन नहीं हैं, किसी की भी आँखों में भय अथवा संकोच नहीं है, उस देश में स्वामी जी ने जब निस्तेज युवाओं को देखा तो उनके मन को कितनी पीड़ा हुई होगी। मद्रास के युवाओं को अपनी समर-नीति समझाते हुए वह पूछते हैं क्या आपकी रातों की नींद नहीं उड़ जाती जब आप इन ऋषियों के

1. कठोपनिषद्, 1.3.14

वंशजों को अज्ञान व अंधविश्वास के अंधकार में पड़ा देखते हैं ? यह बात हमें बताती है कि उनके मन में इस विषय को लेकर कितनी पीड़ा थी और क्यों वे रात-रातभर सो नहीं पाते थे। अमेरिका की सुख-सुविधा में भी उनके यजमान उनके तकिये को भीगा हुआ क्यों पाते थे ? अपने देश-बान्धवों के प्रति इस करुणा का आधार केवल भौतिक विपन्नता नहीं थी। अधिक गहरी पीड़ा खोये स्वत्व की थी। सिंह का सिंहत्व जगाने की चुनौती उन्होंने अपने जीवनव्रत के रूप में कन्याकुमारी में स्वीकार की।

एक सामान्य-सा चिकित्सक भी जानता है कि केवल लक्षणों का उपाय करने से स्थायी उपचार सम्भव नहीं है। हम अपने स्वत्व को ही भूल गए हैं। अमेरिका की तरह ही भारत को भी स्वयं से पूछना होगा कि 'हम हैं कौन?' भारतीय होने का अर्थ क्या है? अपने स्वयं के ऐतिहासिक अनुभव के आधार पर अपनी खोज। अपने पूर्वजों के धर्म व संस्कृति के आधार पर अपनी राष्ट्रीयता की खोज। इन सबके लिये आवश्यक है धर्म-जागरण। जबतक भारत में पुनः धर्म को प्रतिष्ठित नहीं किया जाएगा, तबतक सारे प्रयास अधूरे ही होंगे। स्वामी विवेकानन्द ने इस बात को कई बार दोहराया था कि भारत के पतन का कारण धर्म नहीं है, अपितु धर्म के मार्ग से दूर जाने से ही भारत का पतन हुआ है। इतिहास साक्षी है कि जब-जब हम अपने धर्म को भूल गए, तब-तब हमारा पतन हुआ। हर बार धर्म के जागरण से ही नवोत्थान की लहर चली। 19वीं शती में स्वामी जी ने इस नवजागरण का सूत्रपात किया था। उन्होंने आह्वान किया था कि युवा उनकी इस योजना पर कार्य करें। आश्वासन भी दिया था कि जो उनके कार्य में जुट जाएगा, वह स्वयं कंधे-से-कंधा लगाकर उसका साथ देंगे।

संक्षेप में स्वामी विवेकानन्द ने सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का परिचय भारत को करवाया। उन्होंने हिंदुत्व को भारत की राष्ट्रीय पहचान के रूप में प्रतिष्ठित किया। 'हिंदू-राष्ट्र'— इस शब्दावली का प्रथम प्रयोग भी सम्भवतः स्वामी विवेकानन्द ने ही किया था। शिकागो में दिनांक 11 सितम्बर, 1893 को दिए अपने प्रथम भाषण 'Response to Welcome' में उन्होंने अपने हिंदू होने पर गर्व का विस्तार से वर्णन किया है। दिनांक 17 सितम्बर, 1893 को उनके द्वारा प्रस्तुत 'Paper on Hinduism' (हिंदू-धर्म पर निबन्ध) हिंदुत्व की राष्ट्रीय

परिभाषा ही है। इस राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में समझने पर हमें हमारे विशाल देश की बाह्य विविधता में अंतर्निहित एकात्मता के दर्शन होते हैं। विविधता राजनैतिक व्यवस्था में भी रही होगी, तथापि सहस्राब्दियों से यह भारतवर्ष एक सांस्कृतिक राष्ट्र रहा है। स्वामी जी ने शिकागो-दिग्विजय से वापसी पर पूरे भारत में इसी राष्ट्रीयता का जागरण किया। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि केवल अन्धे देख नहीं पाते और विक्षिप्त-बुद्धि समझ नहीं सकते कि यह सोया देश अब जाग उठा है। अपने पूर्व-गौरव को प्राप्त करने से इसे अब कोई नहीं रोक सकता। सुश्री भगिनी निवेदिता (1867-1911) ने स्वामी जी के बारे में लिखा है, '...उन्होंने एक पण्डित की भाँति नहीं, अपितु एक अधिकारी व्यक्ति की भाँति उपदेश दिया; क्योंकि जिस सत्यानुभूति का उपदेश उन्होंने दिया, उसकी गहराइयों में वह स्वयं भी गोता लगा चुके थे।'[1] इस तरह समस्त विविधताओं, मतभेदों व कभी-कभार तो विवादों से ऊपर हिंदुत्व की एकात्मक भूमिका को स्वामी जी ने सैद्धान्तिक विश्लेषण के साथ प्रस्थापित किया। प्रत्येक हिंदू को ये व्याख्यान अवश्य पढ़ने चाहिये।

स्वामी जी के उपर्युक्त विचारों को उनके अनुयायीद्वय– सुश्री भगिनी निवेदिता तथा श्रीअरविन्द (1872-1950) ने और भी अधिक विस्तार से अपने लेखों में स्पष्ट किया है। भगिनी निवेदिता द्वारा लिखित *'Aggressive Hinduism'*[2] (आक्रामक हिंदुत्व) तथा श्रीअरविन्द का *'The Renaissance in India with the Defence of Indian Culture'*[3] (भारतीय-संस्कृति की रक्षा द्वारा भारत का नवजागरण)– ये दोनों विशेष पठनीय हैं। उस समय पश्चिमी पाठकों के लिए लिखी इन रचनाओं को आज के आधुनिक भारतीय-युवा भी

1. '...He taught with authority, and not as one of the Pandits. For he himself had plunged to the depths of the realisation which he preached...' —Complete Works of Swami Vivekananda, Vol. I, Introduction (Our Master and his Massage).
2. Published in *'The Complete Works of Sister Nivedita'*, Vol. III: Indian Art; Cradle Tales of Hinduism; Religion and Dharma; Aggressive Hinduism, ISBN 978-1-177-78247-0
3. Published in *'The Complete Works of Sri Aurobindo'*, Vol. XX : The Renaissance in India and Other Essays on Indian Culture, Published by Sri Aurobindo Ashram Publication Department, Pondicherry.

ठीक से समझ सकते हैं, अस्तु!

स्वामी विवेकानन्द जी की सार्द्ध-शती (150वीं जयन्ती) के उपलक्ष्य में प्रकाशित हो रही प्रस्तुत पुस्तक **'स्वामी विवेकानन्द की इतिहास-दृष्टि'** देश के विख्यात इतिहासकार डॉ० सतीश चन्द्र जी मित्तल की स्वामी विवेकानन्द के भारतीय एवं विश्व-इतिहास-संबंधी मौलिक विचारों पर एक विस्तृत शोध-निबन्ध है। आदरणीय मित्तल जी एक सिद्धहस्त लेखक और देश के एक जाने-माने इतिहासकार हैं। उन्होंने स्वामी विवेकानन्द के विशाल साहित्य का आलोड़न करने के पश्चात् उनकी इतिहास-दृष्टि को नवनीत के समान निकालकर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। यह प्रामाणिक सामग्री भावी पीढ़ी को जगानेवाली एवं निष्पक्ष शोधकर्ताओं के लिए एक अनुपम देन है। इस उत्कृष्ट कृति के लिए हम विद्वान् लेखक के उपकृत हैं।

बाबा साहब आपटे-स्मृति भवन
'केशव-कुञ्ज', झण्डेवालान,
नयी दिल्ली-110 055

बालमुकुन्द

(बालमुकुन्द पाण्डेय)
राष्ट्रीय संगठन-सचिव
अखिल भारतीय इतिहास-संकलन योजना

दीपावली,
कलियुगाब्द 5114

प्राक्कथन

प्रस्तुत लघु पुस्तिका में युगद्रष्टा स्वामी विवेकानन्द (1863-1902) के ओजस्वी तथा प्रेरणास्पद भाषणों, लेखों, पत्रों तथा समय-समय पर हुए वार्तालापों में भारतीय-इतिहास के सन्दर्भ में यदा-कदा आए मार्गदर्शक-बिन्दुओं, व्यक्तियों तथा प्रसंगों को अति संक्षेप में रखने का विनम्र प्रयत्न किया गया है।

स्वामी विवेकानन्द यद्यपि व्यावसायिक इतिहासकार न थे, तथापि उनका समकालीन परिस्थितियों का तथा गौरवमय इतिहास का विश्लेषण जहाँ एक ओर ब्रिटिश विद्वानों के मनगढ़न्त तथा भ्रामक प्रश्नों तथा प्रचार का तर्कसंगत तथा प्रामाणिक उत्तर प्रस्तुत करता है, वहीं भारतीय-इतिहासकारों को दिशा-बोध भी कराता है। इतिहास की अनेक मूल विसंगतियाँ, जैसे- आर्य बाहर से आए, आर्य-द्रविड़ विवाद, भारत प्राचीनतम राष्ट्र नहीं है, भारत की कोई ऐतिहासिक सामग्री नहीं है, आदि जटिल समस्याओं पर, जिनसे आज भी इतिहास के विद्यार्थी के मन में भटकाव है, स्वामी विवेकानन्द के विचार तथ्य और तर्क के आधार पर मार्ग प्रशस्त करते हैं।

इस लघु पुस्तिका की रचना में मैंने स्वामी विवेकानन्द के साहित्य के अतिरिक्त अनेक विद्वानों की प्रकाशित रचनाओं से सहायता ली है। एतदर्थ मैं उन सभी का आभारी हूँ। मैंने इसमें अपनी पूर्व-रचनाओं का भी उपयोग किया है। श्री बालमुकुन्द जी का मैं विशेष कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने अपने व्यस्त समय में से उपर्युक्त पुस्तिका की आमुख लिखी। श्री गुंजन अग्रवाल का भी मैं आभारी हूँ, जिन्होंने इसे कंप्यूटर पर टंकन में सहयोग देकर इसे सुन्दर रूप प्रदान किया।

आशा है कि महान् आध्यात्मिक गुरु तथा राष्ट्र-पुरुष स्वामी विवेकानन्द की सार्द्ध-शती (150वीं जयन्ती) पर यह छोटी-सी भेंट पाठकों को पसन्द आयेगी।

—डॉ० सतीश चन्द्र मित्तल

लेखक-परिचय

उत्तरप्रदेश के मुजफ्फरनगर ज़िलांतर्गत कांधला कस्बे में दिनांक 1 जनवरी, 1938 ई० को जन्मे श्री सतीश चन्द्र मित्तल ने आगरा विश्वविद्यालय से एम०ए० (इतिहास), पंजाब विश्वविद्यालय से एम०ए० (राजनीतिविज्ञान) एवं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से *'फ्रीडम मूवमेन्ट इन पंजाब (1905-1929)'* शोध-प्रबन्ध पर पीएच० डी० की उपाधि प्राप्त की। पहले आर०के०एस्०डी० महाविद्यालय (कैथल) में कुछ वर्षों तक तथा बाद में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के इतिहास-विभाग में प्राध्यापक, कुल 38 वर्ष के अध्यापन का अनुभव रखनेवाले डॉ० सतीश चन्द्र मित्तल अवकाशप्राप्त वरिष्ठ प्रोफेसर हैं।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन, इतिहासशास्त्र एवं प्रादेशिक अध्ययन की विशेषज्ञतावाले डॉ० मित्तल ने अंग्रेज़ी में 9 तथा हिंदी में आधुनिक इतिहास पर 25 पुस्तकें लिखी हैं, जबकि 7 अन्य पुस्तकों में आपके लेख अध्याय के रूप में सम्मिलित हैं। आपकी कुछ हिंदी-पुस्तकों का अनुवाद अंग्रेज़ी, कन्नड़ तथा गुजराती में हुआ है। इसके अतिरिक्त देश की अनेक प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में आपके अंग्रेज़ी तथा हिंदी भाषा में 300 से अधिक लेख प्रकाशित हैं। राष्ट्रीय तथा प्रादेशिक इतिहास-संगोष्ठियों तथा सेमिनारों में आप अनेक बार 'अध्यक्ष', 'गेस्ट ऑफ़ ऑनर' तथा 'रिसोर्स पर्सन' के रूप में रहे हैं।

वर्ष 1997 से 2003 तक आप 'भारतीय-इतिहास-अनुसंधान-परिषद्' के सदस्य रहे तथा आप 'इण्डियन हिस्टॉरिकल रिकार्ड्स कमीशन' से भी जुड़े रहे हैं। सम्प्रति आप 'अखिल भारतीय इतिहास-संकलन योजना' के राष्ट्रीय कार्याध्यक्ष हैं।

स्वामी विवेकानन्द की इतिहास-दृष्टि

स्वामी विवेकानन्द मूलतः भारत के एक आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक युगपुरुष थे। वे प्रारम्भ से ही कुशाग्र-बुद्धि, करुणामय हृदय तथा अलौकिक प्रतिभा के धनी थे। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। वे न कोई इतिहासकार थे और न ही उन्हें राजनीति से कोई रुचि थी, बल्कि उन्होंने अपने लेखों तथा भाषणों में राजनीति को कोई महत्त्व न दिया, बल्कि इसे 'बकवास' कहा।[1] परन्तु वे छात्र-जीवन से ही इतिहास, दर्शन, साहित्य व पाश्चात्य चिन्तन में भी गहरी रुचि रखते थे।[2] उन्होंने यूरोपीय तथा भारतीय-इतिहास का गम्भीर अध्ययन किया था। फ्रांसीसी-क्रान्ति तथा नेपोलियन के रोमाञ्चकारी जीवन से भी वे प्रभावित थे। उन्होंने अपने परीक्षा-काल में इतिहासकार ग्रीन (1837-1883) के *'ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ इंगलिश पिपुल'*-जैसे 10-खण्डीय विशाल ग्रन्थ को केवल तीन दिनों में ही पढ़ डाला था।[3] इतिहास के प्रति उनकी जिज्ञासा तथा उत्सुकता का अनुमान इसी

1. स्वामी चेतनानन्द, *'गॉड लिविज विद दैम : लाइफ स्टोरीज़ ऑफ़ शिक्सरीन मोनास्टिक डिसाइपल्स ऑफ़ श्री रामकृष्ण'* (कोलकाता, प्रथम संस्करण, 1997, पुनर्मुद्रण 2001), पृ० 52
2. *वही,* पृ० 19
3. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 8 (कोलकाता, 1989), पृ० 266-267

बात से लगाया जा सकता है कि वे किसी भी बात को मानने के लिए उसे प्रमाण की कसौटी पर खरा चाहते थे। वे कहते थे कि बिना प्रमाण के सत्य न मानो, सत्य इसलिए भी न मानो क्योंकि किसी ने किताब में लिखा है। सत्य न मानो, क्योंकि ज्ञान कहता है।[1]

इतिहास की व्यापक परिभाषा :

स्वामी विवेकानन्द ने तत्कालीन विश्व में प्रचलित 'हिस्ट्री' का अर्थ 'हिज़+स्टोरी' यानि राजा-महाराजाओं से जुड़ी कहानियों तथा घटनाओं को अस्वीकार किया। उन्होंने लिखा :

> 'यदि 'इतिहास' शब्द केवल राजे-रजवाड़ों की कथाओं से ही लिया जाए, यदि केवल सामाजिक जीवन के उस चित्रण को ही इतिहास माना जाए, जिसमें समय-समय पर होनेवाली शासकों की कलुषित वासनाओं, उद्दण्डताओं और लोभवृत्ति का नग्न नर्तन देखना पड़ता हो, अथवा उन शासकों के अच्छे-बुरे कृत्यों तथा उनके तत्कालीन समाज पर परिणाम के विवेचन को ही 'इतिहास' की संज्ञा दी जाए, तो शायद भारत के पास ऐसा कोई इतिहास नहीं मिलेगा।'[2]

इसके विपरीत स्वामी विवेकानन्द ने इतिहास की परिभाषा अथवा अर्थ को व्यापक सन्दर्भ में लिया। वे इतिहास को केवल मानव के अथवा राजाओं के लौकिक क्रियाकलापों के वर्णन तक सीमित नहीं रखते। बल्कि वे इतिहास को जीवन के लौकिक तथा पारलौकिक जीवन का अंग मानते हैं।

एक स्थान पर इसके बारे में 'इतिहास' का अर्थ स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा :

"हर धर्म के दैवीय अथवा मानवी उपदेशकों के जीवन द्वारा चरितार्थ

1. स्वामी चेतनानन्द, *'गॉड लिविज विद दैम : लाइफ स्टोरीज़ ऑफ़ शिक्सरीन मोनास्टिक डिसाइपल्स ऑफ़ श्री रामकृष्ण'*, पृ० 20
2. सतीश चन्द्र मित्तल, *'भारतीय-राष्ट्रचिन्तकों का वैचारिक दर्शन तथा इतिहास-दृष्टि'* (हैदराबाद, 2001), पृ० 52

प्रत्येक धर्म को दर्शनशास्त्र का धर्म स्वीकार किया जाता है। इसमें पौराणिक गाथाएँ भी शामिल हैं, क्योंकि जो कुछ एक जाति या युग के लिए पुराण-गाथा है, वही दूसरी जातियों या युगों के लिए इतिहास था या युग के लिए इतिहास हो जाता है।"[1]

संक्षेप में वे इतिहास की दार्शनिक अथवा धार्मिक व्यापक परिभाषा देते हैं। स्वामी विवेकानन्द इसमें विश्व के प्रत्येक धर्म के दर्शनशास्त्र तथा पौराणिक गाथाओं सहित 'मानवीय उपदेशकों' की विस्तृत शृंखला के भाषणों, विचारों व चिन्तन को समाहित करते हैं।

इतना ही नहीं, इसका विस्तृत तथा व्यापक स्वरूप स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा : "हर सामान्य मानव का जीवन भी उसके अतीत-भावसमूह का इतिहास ही है।"[2]

उन्होंने पुनः स्पष्ट किया :

"समूची जाति का यह अतीत-भावसमूह प्रत्येक व्यक्ति में आनुवांशिकता, वातावरण, शिक्षा एवं पूर्वजन्म के संस्कारों द्वारा आता ही रहता है। हमारा आज का वर्तमान रूप उस अनन्त अतीत के एक कार्य और फल के अतिरिक्त और क्या है?[3]

भारत- ऐतिहासिक साधनों का अक्षय भण्डार :

स्वामी विवेकानन्द तथा उनकी आध्यात्मिक शिष्या भगिनी निवेदिता (1867-1911) ने अनेक बार अपने लेखों तथा भाषणों में ब्रिटिश-इतिहासकारों द्वारा फैलाए गए इन मनगढ़न्त गप्पों तथा भ्रामक प्रचार की भर्त्सना तथा कटु आलोचना की कि भारतीय-इतिहास जानने का कोई विश्वसनीय साहित्य अथवा

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 9 (कोलकाता, 1989), यह लेख कुमारी एस्०ई० काल्डो के काग़ज़ों से मिला।
2. *वही*, भाग 7, पृ० 216
3. *वही*, भाग 7, पृ० 216

साधन नहीं है।[1] अंग्रेज़-विद्वानों के अनुसार भारतीय-इतिहास जानने का कोई साधन है ही नहीं। उल्लेखनीय है कि अंग्रेज़ों ने भारतीयों में हीन भावना पैदा करने के लिए ऐसे मनगढ़न्त तथा भ्रामक प्रचार किये। उदाहरण के लिए इतिहासकार लुई डिकिन्सन (1862-1932) ने कहा कि 'हिंदू इतिहासकार हैं ही नहीं।'[2] इंग्लैण्ड के जूलियस एंगलिश ने भारतीय-इतिहास को उपाख्यान, कल्पित तथा परम्परा (legend, myth and tradition) कहा है। प्रसिद्ध ऑस्ट्रियाई-प्राच्यविद् मोरिज़ विंटरनिट्ज़ (1863-1937) ने भी लिखा कि भारतीयों के पास आख्यायिकाएँ व पुराण हैं, अर्थात् वर्णात्मक कल्पित कथाएँ व उपाख्यान हैं, कोई इतिहास नहीं है।'[3] काव्य में भी प्रासंगिक वार्ता या कथा है। आर्थर एंथोनी मैक्डॉनल (1854-1930) ने भारतीय-साहित्य में इतिहास को एक कमज़ोर पक्ष माना है।[4] इसी प्रकार के विचार जॉन फेथफुल फ्लीट (1847-1917), एलीफिन्स्टन (1779-1859), कोवेल, विंसेन्ट आर्थर स्मिथ (1843-1920) आदि ने भी दिए हैं।

परन्तु कुछ विद्वानों ने इस भ्रामक प्रचार को ग़लत भी कहा है। फ्रेडरिक मैक्समूलर (1823-1900) ने माना है कि कुछ अंग्रेज़-लेखकों ने वेदों को गड़रियों के गीत तथा ब्राह्मण-ग्रन्थों को जड़-बुद्धि का प्रत्यय (Tweddle of idiots) भी कहा है।[5]

स्वामी विवेकानन्द ने अपने भाषणों तथा लेखों में वेदों (श्रुति) तथा पुराणों के ऐतिहासिक साधनों के रूप में विस्तृत चर्चा की है तथा इनसे जुड़ी अनेक घटनाओं तथा प्रसंगों का विवेचन किया है।

1. विस्तार के लिए देखें, *'सिस्टर निवेदिता : फ़ुटफॉल्स ऑफ़ इण्डियन हिस्ट्री'* (लन्दन, 1932); देखें लेख *'सम् प्रॉबलम्स ऑफ़ इण्डियन रिसर्च'* (पृ० 176-186) और *'द हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया एण्ड इट्स प्रॉब्लम्बस'* (पृ० 6-25)
2. लुई डिकिन्शन, *'एन एस्से ऑन द सिविलाइज़ेशन ऑफ़ इण्डिया, चायना एण्ड जापान'*, पृ० 15
3. मोरिज़ विंटरनिट्ज़, *'ए हिस्ट्री ऑफ़ इण्डियन लिटरेचर'*, पृ० 209
4. ए०ए० मैक्डॉनल, *'हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत लिटरेचर'*, पृ० 11
5. मैक्समूलर, *'ए हिस्ट्री ऑफ़ एशियंट संस्कृत लिटरेचर'* (लन्दन, 1859), पृ० 209

स्वामी विवेकानन्द ने वेद को हिंदुओं का आदिग्रन्थ माना है।[1] उनका कहना है कि वेद का अर्थ कोई ग्रन्थ नहीं है, बल्कि इसका अर्थ है : 'विविध समयों पर विभिन्न व्यक्तियों द्वारा आविष्कृत आध्यात्मिक नियमों का संचित कोश।'[2] वे वेदों के दो भाग मानते हैं, जिसमें एक कर्मकाण्ड और दूसरा ज्ञानकाण्ड अर्थात् एक संस्कारों से जुड़ा है तथा दूसरा आध्यात्मिकता से।[3] उनका मानना है कि पृथ्वी का कोई व्यक्ति वेदों का निर्माण करने का दम नहीं भर सकता। साथ ही वे यह भी कहते हैं कि पाणिनी-व्याकरण पर पूर्ण अधिकार किए बिना वेदों की भाषा में पारंगत होना असम्भव है।[4]

स्वामी विवेकानन्द श्रुति को बड़ा महत्त्व देते हैं। उनके अनुसार हिंदू-जाति ने अपना धर्म श्रुति— वेदों से प्राप्त किया है। उनकी धारणा है कि वेद अनादि और अनन्त हैं, जबकि श्रुतियों (वेदों) में वर्णित जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूप के पारस्परिक संबंधों का वर्णन है ।

स्वामी विवेकानन्द उपनिषदों को ऐतिहासिक साहित्य के रूप में अत्यधिक महत्त्व देते हैं। एक स्थान पर उन्होंने स्वयं कहा कि "मैं उपनिषदों के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र से उद्धरण नहीं देता।"[5] उन्होंने अपने काल में अनुमानतः इनकी संख्या 108 बतलाई है। उन्होंने *'अल्लोपनिषद्'*, जिसमें अल्लाह की स्तुति की गई है, सम्राट् अकबरकालीन रचना मानी है।[6]

पुराणों को स्वामी विवेकानन्द इतिहास मानते हैं । उनका विचार है कि इस पृथ्वी पर ऐसा कोई नहीं है जो इतिहास और पुराण के सूक्ष्म पार्थक्य को पकड़ सके। वे पुराणों को महान् सत्य मानते हैं। प्रत्येक पुराण का मूलाधार

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 9 ,पृ० 63
2. *वही*, भाग-1, देखें भगिनी निवेदिता की भूमिका, *'हमारे गुरु और उनका सन्देश'*, पृ० 1-2, साथ ही देखें पृ० 7-8
3. *वही*, भाग 8, पृ० 19
4. *वही*, भाग 1, पृ० 332
5. *वही*, भाग 8, पृ० 132
6. *वही*, भाग 5, पृ० 320

कोई-न-कोई ऐतिहासिक सत्य मानते हैं। उनके अनुसार पुराण का उद्देश्य मनुष्य को सूक्ष्म सत्य से, उसके विभिन्न रूपों में परिचय कराना है। उनका यह भी मानना है कि पुराण में यदि कोई ऐतिहासिक सत्य न हो, तो भी ये अपने द्वारा प्रतिपादित सर्वोच्च सत्य के संबंध में प्रामाणिक हैं। वैदिक धर्म को सर्वसाधारण जनता में लोकप्रिय बनाने के लिए पुराणों की रचना हुई। अतः संक्षेप में वे 'पुराण के उदात्त भावों को जनता तक पहुँचाने के निमित्त हिंदू-धर्म का प्रयास' मानते हैं।[1]

स्वामी विवेकानन्द ने ऐतिहासिक साहित्य में *रामायण* तथा *महाभारत* को बड़ा महत्त्व दिया है। इन्हें 'विश्व-साहित्य में अप्रतिम'[2] माना है। *महाभारत* को 'विश्व के श्रेष्ठतम ग्रन्थों में' माना है।[3] इसी भाँति गीता को अमर कहा है।

संक्षेप में वे भारत में ऐतिहासिक साधनों की प्रचुरता मानते हैं। वे निष्कर्ष में बताते हैं कि भारत में 'विशाल धार्मिक साहित्य, काव्य-सिंधु, दर्शनशास्त्रों एवं विभिन्न शास्त्रों की प्रत्येक पंक्ति का हमारा श्रवण, विशिष्ट राजवंशों की वंशावलियाँ एवं जीवन-चरित्रों की स्पष्ट अपेक्षा सहस्र गुणा अधिक चित्र प्रस्तुत करती है।'[4] उन्होंने इतिहासपुराण को 'पंचम वेद' के रूप में माना है।

भ्रामक इतिहास को अस्वीकार करो :

स्वामी विवेकानन्द ने अंग्रेज़ों द्वारा किए गए भ्रामक तथा तथ्यहीन इतिहास-लेखन की कटु आलोचना की। वे पहले प्रवक्ता थे, जिन्होंने स्पष्ट रूप से अंग्रेज़ों द्वारा लिखित विकृत इतिहास का प्रतिरोध किया। उन्होंने कहा कि "अंग्रेज़ों द्वारा लिखित इतिहास से हमारा इतिहास विकृत नहीं होना चाहिये, क्योंकि यह केवल भारत के पतन की कहानी कहता है।' उन्होंने आह्वान किया कि अब समय आ गया है कि हम अपने हज़ारों सालों में जी रही जीवित सभ्यता के लिए स्वतन्त्र मार्ग ढूँढ़ें।

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 8 ,पृ० 133
2. *वही*, भाग 7, विस्तार के लिए देखें पृ० 132-168
3. *वही*, भाग 7, पृ० 159
4. एकनाथ राणाडे (संकलित तथा संपादित), *'उत्तिष्ठ जाग्रत् : स्वामी विवेकानन्द का हिंदू-राष्ट्र के प्रति अमर सन्देश'* (कानपुर, 1963), पृ० 3

सन् 1891 में उन्होंने कलकत्ता के युवा विद्यार्थियों के एक समूह के समक्ष कहा था :

"अंग्रेज़ों तथा अन्यों (पाश्चात्य लेखकों) द्वारा लिखा गया हमारे देश का इतिहास हमारे मनों को कमज़ोर नहीं कर सकता, क्योंकि वे केवल पतन की चर्चा करते हैं। ऐसे विदेशी भी हैं जो हमारे स्वभाव, रीति-रिवाजों या धर्म एवं दर्शन के बारे में बहुत कम जानते हैं। वे भारत के बारे में विश्वसनीय तथा निष्पक्ष इतिहास कभी कैसे लिख सकते हैं ? स्वाभाविक रूप से उसमें अनेक झूठे कथन तथा ग़लत निष्कर्ष हैं।"[1]

इतना ही नहीं, स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय-इतिहास के बारे में भ्रम फैलानेवाले भारतीयों की भी कटु आलोचना की। उन्होंने कहा :

"लोग किस प्रकार श्रद्धा और विश्वासरहित होते जा रहे हैं। वे कहते हैं कि गीता तो एक प्रक्षिप्त अंश है और वेद देहाती गीत-मात्र हैं। वे भारत के बाहर के देशों के बारे में तथा विषयों के संबंध में तो हर बात समझ लेते हैं, पर यदि उनसे अपने पूर्वजों के नाम पूछें, तो चौदह पीढ़ी तो दूर, सात पीढ़ी तक का नाम नहीं जानते।"[2]

उन्होंने अपनी बात को दुहराते हुए एक अन्यत्र स्थान पर कहा :

"कभी हमें यह नहीं बताया जाता है कि हमारे में भी महापुरुषों का जन्म हुआ है। हमें एक भी तो अच्छी बात नहीं सिखाई जाती। हमें अपने हाथ-पांव चलाना तक नहीं आता है। हमें इंग्लैण्ड के पूर्वजों की तो एक-एक घटना और तिथि याद हो जाती है, पर दुःख है कि अपने

1. अंग्रेज़ों द्वारा भारतीय-इतिहास को विकृत करने के संबंध में विस्तार से अध्ययन के लिए देखें : सतीश चन्द्र मित्तल, *'इण्डिया डिस्टोर्टेड : ए स्टडी ऑफ़ ब्रिटिश हिस्टॉरियन्स ऑन् इण्डिया'* (3 भागों में), (दिल्ली, 1995, 1996, 1998) एवं *'ब्रिटिश इतिहासकार तथा भारत'* (नयी दिल्ली, 2011)
2. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 8, पृ० 228

देश के अतीत से हम बेख़बर रहते हैं। हम केवल निर्बलता का पाठ पढ़ते हैं। पराजित राष्ट्र होने से हमें यह विश्वास हो गया है कि हम शक्तिहीन तथा परावलम्बी हैं।"[1]

स्वामी विवेकानन्द ने झूठे तथा विकृत इतिहास के बारे में कहा कि 'ऐसे इतिहास को अस्वीकार करो तथा प्राचीन भारत के सही इतिहास को लिखना प्रारम्भ करो जो राष्ट्रीय स्तर पर अनुसन्धानों पर हो, विदेशी प्रयासों से मुक्त तथा स्थानीय जातीय रूढ़ियों से दूर हो।' स्वामी विवेकानन्द ने पाश्चात्य रचनाओं को 'छद्म ऐतिहासिक प्रचार' (Pseudo Historical Propaganda)[2] कहा है। उनका मत था कि भारतीय-इतिहास भारतीयों द्वारा ही लिखा जाना चाहिये । उनका पूरा विश्वास था कि 'प्राचीन के वर्णन से ही भविष्य को परिवर्तित किया जा सकता है। अतः जितना ज़्यादा हिंदू अपने गौरवमय अतीत का अध्ययन करेंगे, उतना ही शानदार भविष्य होगा। जो जितना प्रत्येक के अतीत के द्वार पर खड़ा करने का प्रयत्न करता है, राष्ट्र-हितैषी भी वही है।'[3]

इतिहास-संबंधी भ्रान्तियों का निवारण :

स्वामी विवेकानन्द भारत के उन पहले विद्वानों में से हैं, जिन्होंने 19वीं शताब्दी में अंग्रेज़ों की इस गपोड़बाजी को चुनौती दी कि आर्य बाहर से आये। वे पूर्णतः अंग्रेज़-विद्वानों के इस मनगढ़न्त विचार को अस्वीकार करते हैं। उन्होंने आर्यों के मध्येशिया या उत्तरी यूरोप को आर्यों के आदिस्थान के सन्दर्भ में मानने के लिए आवश्यक प्रमाणों का पूर्णतः अभाव बतलाया। उन्होंने कहा कि "हिंदू-शास्त्रों में एक भी शब्द नहीं है जो यह प्रमाण दे कि आर्य किसी अन्य देश से आये। हाँ,

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग-8, पृ० 269 (22 जनवरी, 1898, श्री सुरेन्द्रनाथ सेन की व्यक्तिगत डायरी से)
2. सतीश चन्द्र मित्तल, *'भारतीय राष्ट्रीय चिन्तकों का वैचारिक दर्शन तथा इतिहास-दृष्टि'*, पृ० 57
3. *'प्रबुद्ध भारत'* (अगस्त-अक्टूबर, 1879 लेख *'इण्डियन हिस्ट्री : इन इट्स राइट पर्सपैक्टिव'*; नवरत्न एस० राजाराम, *'फ्रॉम हड़प्पा टू अयोध्या'* (बैंगलुरु, 1997), पृ० 29

प्राचीन भारत में अफ़गानिस्तान भी शामिल था।"[1] उन्होंने आर्यों तथा अनार्यों के कपोल-कल्पित संघर्ष के सिद्धान्त को भी अस्वीकार किया। व्यंग्यात्मक शैली में उन्होंने कहा कि "ये बिल्कुल अतार्किक और अयौक्तिक है। उन दिनों यह सम्भव ही नहीं था कि मुट्ठीभर आर्य यहाँ आकर अनार्यों पर अधिकार जमाकर बस गए हों। अजी अनार्य उन्हें खा जाते, पाँच ही मिनट में उनकी चटनी बना डालते।"[2]

उन्होंने पुनः पाश्चात्य विद्वानों के इस मत का कि 'आर्य लोग कहीं से घूमते-फिरते आकर भारत में रहे, उससे पूर्व जंगली जाति को मारकर तथा उनसे ज़मीन छीनकर यहाँ बस गये'— निश्चित ही 'दुर्बुद्धिता तथा दुष्टतापूर्ण' कृत्य कहा।[3] उनका कथन है, "आश्चर्य तो इस बात का है कि हमारे भारतीय-विद्वान् भी उन्हीं के स्वर-में-स्वर मिलाते हैं और यही सब झूठी बातें हमारे बाल-बच्चों को पढ़ाई जाती हैं। यही घोर अन्याय है।"[4]

दिनांक 01 अगस्त, 1900 को स्वामी विवेकानन्द ने पेरिस की काँग्रेस में अपने मत के खण्डन करने की चुनौती दी तथा प्रमाणों के आधार पर इस समस्या का निराकरण करने को कहा।[5] उन्होंने पाश्चात्य विद्वानों से उनकी धारणा का आधार भी पूछा। उन्होंने पूछा :

> "किस वेद या सूक्त में अथवा अन्यान्य और कहीं तुमने देखा कि आर्य दूसरे देशों से भारतवर्ष में आये ? इस बात का प्रमाण तुम्हें कहाँ मिला है कि उनलोगों ने जंगली जातियों को मार-काटकर यहाँ निवास किया ? इस व्यर्थ की दुष्टता की क्या आवश्यकता है ?"[6]

स्वामी विवेकानन्द ने आर्य-आक्रमण की कहानी को केवल

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 5, पृ० 186
2. *वही*, भाग 5, पृ० 186; एकनाथ राणाडे, पूर्वोद्धृत, पृ० 93
3. *वही*, भाग 5, पृ० 186; वही, पृ० 93
4. *वही*, भाग 5, पृ० 186; वही, पृ० 93
5. *वही*, भाग 5, पृ० 186; वही, पृ० 94
6. *वही*, पृ० 94

अन्दाज़-अनुमान पर आधारित बतलाया।[1] उन्होंने यूरोपीयों की मनोदशा तथा प्रकृति का विश्लेषण करते हुए कहा :

> "यूरोपियों को जिस देश में मौका मिलता है, वहाँ के आदिम निवासियों का नाश करके स्वयं मौज़ में रहने लगते हैं। इसलिए उनका कहना है कि आर्य लोगों ने भी वैसा ही किया होगा।"

स्वामी विवेकानन्द ने यूरोपीयों तथा विश्व के अन्य समुदायों को उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं अनुभवों के आधार पर चुनौती देते हुए कटु शब्दों में कहा :

> "ऐ यूरोपीय लोगो! क्या मैं तुमसे पूछ सकता हूँ कि तुमने अभी तक कभी भी किसी देश की दशा को सुधारा है? किसी देश का भला किया है? अपने से अवनत जाति को ऊपर उठाने की तुममें शक्ति है? जहाँ कहीं तुमने दुर्बल जाति को पाया, उसका समूलोच्छेद कर दिया और उसकी निवास-भूमि में तुम खुद बस गए और वे जातियाँ एकदम समाप्त हो गयीं। तुम्हारे अमेरिका का क्या इतिहास है? तुम्हारे ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड, प्रशान्त महासागर के द्वीपसमूह और अफ्रीका का क्या इतिहास है? वे सब जंगली जातियाँ आज कहाँ हैं? एकदम सत्यानाश! जंगली पशुओं की तरह उन्हें तुमलोगों ने मार डाला। जहाँ तुम्हारी शक्ति काम नहीं कर सकती, सिर्फ़ वहीं अन्य जातियाँ जीवित हैं।"[2]

स्वामी विवेकानन्द ने मानव शरीर-रचना के आधार पर यूरोपीय-जन को स्वीकार नहीं किया तथा कहा कि वे कहाँ के रहनेवाले थे, ऐसा कोई ठोस प्रमाण नहीं है। परन्तु वह दृढ़तापूर्वक यह मानते हैं कि प्राचीन भारतीय-जाति में सभ्यता की किरणें सर्वप्रथम उदित हुईं, उन्होंने भारतीयों अथवा आर्यों को यूरोपीय पाशविक प्रवृत्तियों से विपरीत बतलाया। आर्य बड़े दयालु थे, यदि आर्य

1. एकनाथ राणाडे, पूर्वोद्धृत, पृ० 94
2. *वही*, पृ० 95

जंगली लोगों को मार-पीटकर शासन करते, तो उन्हें यहाँ वर्णाश्रम-व्यवस्था की आवश्यकता न थी। उन्होंने लिखा, 'संसार की सभी जातियों में हम ही हैं, जिन्होंने कभी दूसरों पर सैनिक विजय-प्राप्ति का रुख नहीं अपनाया और इसी कारण हम आशीर्वाद के पात्र हैं।'

स्वामी विवेकानन्द ने आर्यों (भारतीयों) तथा यूरोपीयों के उद्देश्यों से तुलना करते हुए स्पष्ट किया :

> 'यूरोप का उद्देश्य है— सबका नाश करके स्वयं को बचाए रखना। आर्यों का उद्देश्य था, सबको अपने समान करना अथवा अपने से भी बड़ा करना। यूरोपीय-सभ्यता का साधन तलवार है और आर्यों की सभ्यता का उपाय— वर्ण-विभाग। शिक्षा और अधिकार के तारतम्य के अनुसार सभ्यता सीखने की सीढ़ी थी वर्ण-विभाग। यूरोप में बलवानों की जय और निर्बलों की मृत्यु होती है। भारतवर्ष में प्रत्येक सामाजिक नियम दुर्बलताओं की रक्षा करने के लिए ही बनाया जाता है।'[1]

स्वामी विवेकानन्द ने आर्य-द्रविड़ के कल्पित विवाद की भी चर्चा की। द्रविड़ों को काला तथा आर्यों को श्वेतवर्णीय बतलाने को उन्होंने बेहूदा बतलाया। उनके अनुसार ये झूठी कहानियाँ इसलिए गढ़ी गईं ताकि भारत को नीचा दिखलाया जा सके तथा नष्ट किया जा सके एवं हिंदू की एकता तथा सांस्कृतिक शक्ति का ह्रास हो।[2] उन्होंने इसे भी निराधार बताया कि शूद्र अनार्य और असंख्य थे। उन्होंने दोनों में कोई अन्तर नहीं बताया, सिवाय इसके कि उत्तर में आर्य तथा दक्षिण में द्रविड़ में भाषा में अन्तर था।[3] इनदोनों के बीच ही विभाजन-रेखा प्राचीनतम काल से भाषा ही रही, रक्त नहीं। जो आजकल 'हिंदू' कहलाते हैं, वह आर्य-जाति जो स्वयं संस्कृत-भाषा और तमिल-भाषी— दो महान् जातियों का सम्मिश्रण है, समस्त हिंदुओं को समान रूप से अपने वृत्त में ले लेती है।

1. एकनाथ राणाडे, पूर्वोद्धृत, पृ० 95
2. सतीश चन्द्र मित्तल, *'भारतीय राष्ट्रीय चिन्तकों का वैचारिक दर्शन तथा इतिहास-दृष्टि'*, (हैदराबाद, 2001), पृ० 55
3. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 5, पृ० 179, 185; वही, भाग 9, पृ० 280-287

गौरवमय अतीत :

स्वामी विवेकानन्द ने विश्व की अन्य प्राचीन सभ्यताओं तथा संस्कृतियों का विश्लेषण करते हुए प्राचीन भारतीय-चिन्तन तथा उसके विविध क्षेत्रों में योगदान की भूरि-भूरि प्रशंसा की। वे भारत को आध्यात्मिकता का आदिस्रोत मानते हैं तथा विश्व को कर्म-सिद्धान्त का दाता कहते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने अपने भारतीय-शिष्यों को पत्रों द्वारा अपने जीवन का लक्ष्य बतलाते हुए सरल अंग्रेज़ी में भारतीय-धर्म तथा प्रत्येक को भारतीय-पूर्वजों तथा अन्य राष्ट्रों के द्वारा जीवन का दृष्टिकोण स्पष्ट करना बताया।[1]

वह भारत के अतीत के बारे में प्रश्न करते हैं— "क्या भारत पीछे रहा? क्या वह मन्दबुद्धि है? क्या वह कौशल में कम है? आप उसकी कला को देखिए, उसके गणित को देखिए, उसके दर्शन को देखिए...।"[2] एक अन्य स्थान पर वे पूछते हैं कि 'तुम जानते हो कि कितने शास्त्रों का उद्गम भारतवर्ष में है?' वह मानते हैं गणितशास्त्र, रसायनशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, संगीतशास्त्र एवं धनुर्विद्या के आविष्कार में, यहाँ तक कि आधुनिक यूरोपीय-सभ्यता के निर्माण में किसी भी प्राचीन अथा अर्वाचीन जाति से कहीं अधिक आर्य-जाति ने योगदान किया है।'

स्वामी विवेकानन्द का मानना है कि गणितशास्त्र का प्रारम्भ यहीं से हुआ। बीजगणित का उद्गम भारत में हुआ। उसी तरह न्यूटन का जन्म होने से हज़ारों वर्ष पूर्व ही भारतीयों को गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त अवगत था।[3]

स्वामी जी का कहना है, "प्राचीन आर्य-जाति ने विविध प्रकार की यज्ञ-वेदियों की रचना में ईंटों की व्यवस्था से रेखागणित शास्त्र का विकास किया और अपनी उपासना तथा यज्ञों के निश्चित समय पर करने के प्रयास में

1. अद्वैताश्रम, *'लेटर्स ऑफ़ विवेकानन्द'* (कोलकाता), पृ० 78 (दिनांक 24 जनवरी, 1894 का पत्र एवं पृ० 274 (17 फरवरी, 1896 का पत्र); स्वामी रंगनाथानन्द, *'स्वामी विवेकानन्द : हिज़ लाइफ़ एण्ड मिशन'* (कलकत्ता, द्वितीय संस्करण, 1965), पृ० 12-14
2. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 4, पृ० 264
3. *वही*, भाग 4, पृ० 177

ज्योतिषशास्त्र को जन्म देकर संसार को हतप्रभ कर दिया।'

सैनफ्रांसिस्को के वेण्डेट हॉल में उन्होंने भारतीय-कला के बारे में बतलाया और कहा कि "एलिज़ाबेथ के युग में भारत और इंग्लैण्ड की तुलना करो, तुम्हारी जनता (इंग्लैण्ड) के लिए वह कैसा अन्धकारमय युग था और हम तबतक कितने ज्ञान के प्रकाश में आ चुके थे। एंग्लो जातियाँ सदैव ही कला के लिए कम उपयुक्त रही हैं।"[1] उन्होंने पुनः कहा, "भारत में संगीत के पूर्ण सप्तस्वरों तक विकसित किया गया था, यहाँ तक कि चतुर्थांश स्वर तक भी विकसित हुए थे। भारत ने संगीत में और नाट्य तथा स्थापत्य कला में नेतृत्व किया।"[2] उनका कथन है कि 'भारत में संगीत में सप्तस्वर 350 ई0पू0 में हो गए थे, जबकि यह यूरोप में 11वीं शताब्दी में आया।'[3]

दिनांक 17 फरवरी, 1895 को स्वामी विवेकानन्द ने ब्रोकलिन स्टैण्डर्ड यूनियन में 'इण्डियाज़ गिफ़्ट टू द वर्ल्ड' विषय पर भारत की विभिन्न क्षेत्रों पर योगदान पर विस्तृत प्रकाश डाला।[4] इसमें उन्होंने विज्ञान, दर्शन, साहित्य, उद्योग एवं कृषि-उपज में भारत की देन पर प्रकाश डाला। जहाँ चिकित्सा-क्षेत्र में प्रारम्भिक वैज्ञानिक डॉक्टर दिए, जो शरीर के विभिन्न अंगों के विशेषज्ञ थे, साथ ही ज्योतिष, दशमलव-प्रणली दी, वहाँ भारतीय-दर्शन की जर्मन-दार्शनिक ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की। साहित्य में *अभिज्ञानशाकुन्तलम्*-जैसी रचना तथा संस्कृत-जैसी समृद्ध भाषा दी। शिल्प तथा अन्य क्षेत्र में रुई, गहने, चीनी, रंगरेज़ी की कारीगरी आदि भारत ने विश्व को दी, खेलों में शतरंज, ताश, पासे खेलना आदि भारत की देन है।

स्वामी विवेकानन्द का विचार है कि जादू, मन्त्र, तन्त्र तथा अन्यान्य सिद्धियाँ असाधारण बातें नहीं हैं। भारतीयों ने मन की शक्तियों का भी गहन अध्ययन किया तथा भारत का इतिहास एक समय में भारतवासियों का चित्त,

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 1, पृ० 262
2. *वही*, भाग 1, पृ० 263
3. *'द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द'*, भाग 2 (कोलकाता, 2005), पृ० 512
4. *वही*, भाग 2, पृ० 510-514

मानव और उसके मन के अध्ययन में डूब गया।[1] भारतीय-जीवन का समस्त इतिहास वह प्रयत्न है जो उसके सुख-दुःख में होकर वेदांत के आदर्शों तक पहुँचाने के लिए किया है। स्वामी विवेकानन्द ने भारत को धर्म और दर्शन की पुण्यभूमि माना है[2], जहाँ बड़े-बड़े महात्माओं तथा ऋषियों का जन्म हुआ। इसे संन्यास एवं त्याग की भूमि कहा है।

स्वामी विवेकानन्द ने यह भी कहा कि भारत ने विश्व को मंगलकामना, बुराई के बदले अच्छाई, दयालुपन, सहनशीलता तथा विनम्रता दी परन्तु विश्व ने दिए कलंकित करने के कार्य, विपत्तियाँ, घृणा, गरीबी तथा गुलामी।[3] पुनः 8 अप्रैल, 1895 को उन्होंने अंग्रेज़ों की देन के रूप में तीन 'बी' अर्थात् बाईबिल, बन्दूक और ब्राण्डी (Bible, Baynet, Brandy) बतलाये।[4]

इस लोक में ही नहीं, मुत्यु के पश्चात् दूसरे लोक के गहरे चिन्तन के सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द भारतीयों को सर्वप्रथम चिन्तक मानते हैं। जन्म-मरण की कठिन समस्या पर उनका कथन है कि यही सर्वप्रथम मानव प्रकृति एवं अंतर्जगत् के रहस्यों की जिज्ञासाओं के अंकुर उगे थे। यही आत्मा की अमरता, एक अंतर्यामी ईश्वर की सत्ता, प्रकृति और मनुष्य के भीतर ओत-प्रोत एक परमात्मा के सिद्धान्तों ने अपने परमशिखर स्पर्श किये। इसी भूमि से अध्यात्म एवं दर्शन की लहर-पर-लहर बार-बार उमड़ी और समस्त संसार पर छा गयीं।'

संक्षेप में स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि अपने गौरवमय अतीत का नित्य स्मरण तथा प्रेरणा प्राप्त करते रहना चाहिये। दिनांक 4 मार्च, 1895 को उन्होंने खेतड़ी के महाराजा अजीत सिंह बहादुर द्वारा अपने अभिनन्दन के उत्तर में कहा, "जो लोग सदैव अपने अतीत की ही ओर दृष्टि लगाए रखते हैं, उनकी निन्दा किया करते हैं, वे कहते हैं कि इस प्रकार निरन्तर अतीत की ओर देखते

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 4, पृ० 177
2. *वही*, भाग 5, पृ० 35
3. *'द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द'*, भाग 2 (कोलकाता, 2005), पृ० 512
4. *वही*, भाग 2, पृ० 517

रहने के कारण ही हिंदू-जाति को नाना प्रकार के दुःख और आपत्तियाँ भोगनी पड़ती हैं, किन्तु मेरी तो यह धारणा है कि इसके विपरीत ही सत्य है। जबतक हिंदू-जाति अपने अतीत को भूली हुई थी, तबतक वह संज्ञाहीन अवस्था में पड़ी रही, और अतीत की ओर दृष्टि जाते ही चहुँओर पुनर्जीवन के लक्षण दिखाई दे रहे हैं।"[1] स्वामी विवेकानन्द का निश्चित मत है कि हिंदू-लोग अतीत का जितना ही अध्ययन करेंगे, उनका भविष्य उतना ही उज्ज्वल होगा।[2]

विश्व-राष्ट्रों में भारत :

स्वामी विवेकानन्द भारत को विश्व का प्राचीनतम राष्ट्र तथा अमेरिका को 'बच्चा-राष्ट्र' बतलाते हैं। उनके अनुसार भारत एक नैतिक आध्यात्मिक राष्ट्र है। प्राचीन भारतीय-जाति में ही सभ्यता की किरणें सर्वप्रथम उदित हुईं।

वह यूरोप की प्राचीन यूनानी एवं रोम-सभ्यताओं के उदय तथा पतन का वर्णन करते हुए बतलाते हैं कि "जब यूनान का अस्तित्व नहीं था, रोम भविष्य के अन्धकार के गर्भ में छिपा हुआ था, तब आधुनिक यूरोपवासियों के पुरखे जंगलों में रहते थे और अपने शरीरों को नीले रंग से रंगा करते थे । उस समय भी हर भारतवासी सक्रिय था।"[3]

वह पुनः इन प्राचीन यूरोपीय-सभ्यताओं का वर्णन करते हुए लिखते हैं, 'एक समय था जब ग्रीक-सेनाओं के सैनिक-संचालन के नाद से धरती काँपा करती थी। किन्तु पृथ्वीतल पर से उसका अस्तित्व मिट गया। अब सुनाने के लिए उसकी एक भी गाथा शेष नहीं है।... पृथ्वी रोम का नाम लेते ही काँप जाती थी। परन्तु आज उसी रोम का कौपिटोलिन पर्वत खण्डहरों का ढेर बन गया है। जहाँ पहले सीज़र राज्य करता था, आज मकड़ियाँ जाला बुनती हैं।'[4]

इस प्रकार कितने ही वैभवशाली राष्ट्र उठे और मिटे। मुट्ठीभर राष्ट्रों में

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 9 (कोलकाता, 2005), पृ० 246
2. *वही*, भाग 9, पृ० 246
3. *वही*, भाग 1, पृ० 323; *'द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द'*, भाग 2, पृ० 513
4. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 5, पृ० 6

से एक भी तो शताब्दियों तक जीवित नहीं रह सकता।[1] किन्तु भारत की अपनी जाति तथा संस्थाएँ युगों की कसौटियों पर खरी उतरी हैं।" वे हुंकारकर कहते हैं कि हिंदुओं का कहना है कि हाँ, हम सभी नये राष्ट्रों को दफ़नाने के लिए खड़े हैं, क्योंकि हमारा लक्ष्य यह जगत् नहीं, वरन् जगदातीत है।"[2] स्वामी विवेकानन्द भारतीय-राष्ट्र को समस्त राष्ट्रों में अत्यधिक धर्माचारी (धार्मिक) राष्ट्र मानते हैं तथा दूसरे राष्ट्रों से इसकी तुलना करने को ईश-निन्दा के समान[3] कहते हैं।

इतिहास की धार्मिक-दार्शनिक-व्याख्या :[4]

स्वामी विवेकानन्द 19वीं शताब्दी के भारतीय-धर्म, दर्शन, आध्यात्मिकता तथा संस्कृति के प्रतिनिधि थे। उन्होंने मुख्यतः प्राचीन भारत के इतिहास का धार्मिक दृष्टि से विस्तृत तथा सूक्ष्म विश्लेषण किया है। उन्होंने प्राचीन भारत के शासन के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा कि निःसन्देह भारतीय-ग्रामों में ग्राम-पंचायतों में गणतान्त्रिक शासन-पद्धति का बीज अवश्य था और अनेक स्थानों पर ये तत्त्व 19वीं शताब्दी तक दृष्टिगोचर होता है।[5] परन्तु उनका विश्लेषण है कि यह भाव ग्राम-पंचायतों को छोड़कर, कालांतर में आगे नहीं बढ़ पाया। यद्यपि इसका विकास संन्यासियों तथा बौद्ध-मठों में स्वायत्त प्रणाली के रूप में विशेष रूप से हुआ। संन्यासियों में नागा-संन्यासियों ने इसे विशेषकर अपनाया। स्वामी विवेकानन्द ने उनकी पंचों की प्रतिष्ठा, प्रभुता तथा प्रभाव को देखकर आश्चर्य प्रकट किया है।

मुख्यतः स्वामी विवेकानन्द ने प्राचीन भारतीय-इतिहास के विकास-क्रम का निर्धारण पुरोहितों (ब्राह्मणों) तथा राजतंत्रों के परस्पर संबंधों के आधार पर किया है। वैदिक काल से ही पुरोहित का भारतीय-इतिहास में विशिष्ट स्थान रहा। पुरोहित यज्ञ में वैदिक मन्त्रों के उद्गाता होते थे। वे मन्त्रबल से देवताओं

1. *वही*, भाग 1, पृ० 323
2. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 1, पृ० 323
3. *वही*, भाग 3, पृ० 259
4. विस्तार के लिए देखें, *वही*, भाग 9, पृ० 201-228
5. *वही*, भाग 9, पृ० 204

को भोजन तथा पेयजल प्रदान करते थे तथा यजमान उनको फल आदि भेंटस्वरूप प्रदान करते थे। संक्षेप में पुरोहित को प्रजा तथा राजा— दोनों में बड़ा सम्माननीय स्थान प्राप्त था। न केवल सामान्य जनता, अपितु राजा भी पुरोहित की कृपा-दृष्टि का इच्छुक रहता था, पुरोहित की सलाह को उच्चतम स्थान दिया जाता था। राजालोग पुरोहितों की 'कृपा के भिखारी' थे।[1] तथा 'पुरोहितों के आशीर्वाद को सर्वश्रेष्ठ राज्य-कर' मानते थे।[2] स्वामी विवेकानन्द का कथन है कि राजाओं को पुराहितों से भयभीत रहने का 'सबसे मुख्य कारण यह था कि उनके यश और उनके पूर्वजों की कीर्ति पुरोहितों की लेखनी के अधीन थी।'[3] बड़े-बड़े अश्वमेध-यज्ञों के अनुष्ठान की यश-गाथा पुरोहितों द्वारा होती थी। संक्षेप में पुरोहितों की संतुष्टि होने पर राजा कोई भी कार्य या दुष्कर्म कर सकता था। अतः प्रारम्भ में पुरोहितों का वर्चस्व रहा।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार कालांतर में बौद्धों तथा जैनों के विप्लव के साथ पुरोहितों की शक्ति का ह्रास हो गया तथा इसके स्थान पर राजभक्तों का विकास हुआ।[4] अनेक छोटे-छोटे राज्यों का निर्माण हुआ। आहुति-भोगी देवताओं की अवनति हुई तथा उनकी प्रतिष्ठा घटी। शक्ति के केन्द्र अब पुरोहित न रहे। राजभक्ति में कुछ काल बाद छोटे-छोटे राज्यों से निकलकर विस्तृत तथा विशाल राज्यों की ओर बढ़ी।

अतः इस युग में आधुनिक हिंदू-धर्म तथा राजपूत आदि जातियों का अभ्युत्थान हुआ, परन्तु राजसत्ता पर राजा का एकाधिकार न रहा, शीघ्र ही पुरोहित-शक्ति का प्रभाव बढ़ा। राज्य-भक्ति के सहायक के रूप में पुरोहित को पुनः महत्त्वपूर्ण स्थान मिला। अब बौद्धों तथा जैनों का पुराना वैर भी मिट गया। परन्तु अब पुरोहित का न ही वह तेज रहा और न ही वह प्रचण्ड बल रहा, जो पहले रहा था। अब राजा तथा पुरोहित— दोनों स्वार्थ-सिद्धि में सहायक हो गए

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 9, पृ० 201
2. *वही*, भाग 9, पृ० 201
3. *वही*, भाग 9, पृ० 201
4. *वही*, भाग 9, पृ० 204

तथा विपक्षियों को समूल नष्ट करने तथा बौद्धों को विनष्ट करने में लग गये। स्वामी विवेकानन्द ने इन दोनों— राजा व पुरोहित— को प्रजा का शोषण करनेवाला, धन हरण करनेवाला, वैर चुकानेवाला आदि बतलाया है। इन राजाओं को प्राचीन राजसूय-यज्ञों की नकल करनेवाले, भाटों और चारणों आदि खुशामदियों से घिरे रहनेवाले और मन्त्र-तन्त्र के शब्द-जाल में फँसे रहनेवाला बताया।[1]

स्वामी विवेकानन्द के मत से पहला प्रयत्न हूण-जाति के राजा मिहिरकुल द्वारा भारत-विजयकर अधिकार करने का अवश्य हुआ। कुछ काल बाद मध्येशिया से आए निष्ठुर एवं बर्बर जातियों ने आक्रमणकर अपने घृणित रीति-रिवाज़ भारत में प्रचलित किये। मुसलमानों के राज्यकाल में राजा स्वयं पुरोहित भी था। राजशक्ति विधर्मी के हाथ में आई तथा पुरोहित की शक्ति नष्ट हो गयी। मनुस्मृति के स्थान पर कुरआन की दण्ड-नीति लागू हुई। संस्कृत की जगह अरबी, फ़ारसी आयी। पुरोहित-वर्ग का कार्य केवल विवाहादि संस्कार कराने तक सीमित हो गया, और वह भी मुसलमानों की कृपा-दृष्टि से।[2]

राजपूतों की शक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न सफल न हुआ। बौद्धों का संहारकर पुरोहितों ने जो शक्ति पुनः प्राप्त की थी, वह शक्ति अब मुसलमानों के हाथ में चली गयी। इस मुस्लिम-शासन के अन्त काल में वीर मराठों तथा सिखों के द्वारा आंशिक रूप से पुनः हिंदू-धर्म का राज्य स्थापित हो सका।[3] अनेक सतत संघर्षों के पश्चात् भी राज्य-शक्ति विधर्मी-राजाओं के नाम पर कई शताब्दियों तक गूँजती रही।

स्वामी विवेकानन्द ने मुस्लिम-शक्ति के काल में एक नवीन शक्ति के शनैः-शनैः प्रभाव का वर्णन किया। वह शक्ति थी इंग्लैण्ड का भारत पर अधिकार। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपनी बुद्धि तथा धन-बल से हिंदू-मुसलमान राजाओं को अपने हाथ की कठपुतली बनाया तथा उन्हें दासत्व स्वीकार करने के

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 9 (कोलकाता, 2005), पृ० 205
2. *वही*, भाग 9, पृ० 206
3. *वही*, भाग 9, पृ० 207

लिए बाध्य किया।[1]

अंग्रेज़ों द्वारा भारत की विजय को स्वामी विवेकानन्द ने ईसा मसीह की विजय, अर्थात् धर्म की विजय स्वीकार न किया और न ही इसे पठान-मुग़ल आदि बादशाहों की विजय की भाँति माना। उनका कथन है : 'ईसा मसीह, बाइबल, राजप्रासाद, अनेक प्रकार के सजी-सजाई बड़ी-बड़ी सेनाओं का सगर्व कूच तथा सिंहासन का विशेष आडम्बर आदि— इन सबके पीछे असली इंग्लैण्ड विद्यमान है। इस इंग्लैण्ड की ध्वजाएँ, पुतलीघरों की चिमनियाँ हैं। इसकी सेना व्यापारिक जहाज हैं। उसकी लड़ाई का मैदान संसार का व्यापार है और उसकी रानी स्वयं स्वर्णांगी लक्ष्मी है।'[2]

स्वामी विवेकानन्द ने इंग्लैण्ड के अधिकार को 'एक बड़ी ही अपूर्व घटना' माना है । उन्होंने इसे 'नयी वैश्य-शक्ति' कहा है।

स्वामी विवेकानन्द ने न केवल भारत, बल्कि विश्व के इतिहास को चार वर्ण-क्रम में बाँटा है। उनका मानना है कि 'संसार के इतिहास का अनुशीलन करने से प्रतीत होता है कि प्राकृतिक नियमों के वश ब्राह्मण आदि चारों वर्ण-क्रम से पृथ्वी का भोग करेंगे।'

स्वामी विवेकानन्द ने संक्षिप्त, परन्तु गहन विश्लेषण करते हुए बतलाया कि भारत की भाँति चीनी, सुमेरी, बेबीलोनी, मिस्र, कैल्डिनवासी, आर्य, ईरानी, यहूदी और अरब-जातियों ने समाज की बागडोर प्रथम युग में ब्राह्मण या पुरोहित के हाथ में चली गयी।[3] इसमें मिस्र आदि प्राचीन देशों में ब्राह्मण या पुरोहित-शक्ति थोड़े ही समय प्रधान रही। यहूदी-जाति में राजशक्ति अनेक प्रयत्न करने पर भी अपना अधिकार बिल्कुल जमा न कर सकी।

दूसरे युग में क्षत्रियों का अर्थात् राजकुल या एकाधिकारी राजाओं का उदय हुआ। मिस्र शीघ्र ही राजशक्ति के अधीन हो गया। चीन में कन्फ्यूशियस प्राचीन धर्म और नीति की प्रतिभा द्वारा गठित हुई राजशक्ति 2,500 वर्षों से

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 9 (कलकत्ता, 2005), पृ० 207
2. *वही*, पृ० 210
3. *वही*, भाग 9, पृ० 208

अधिक तक पुरोहित-शक्ति को अपनी इच्छानुसार चलाती रही। इसमें 200 वर्षों तक तिब्बत के सर्वग्राही लामा राजगुरु होने पर सब प्रकार की चीनी-सम्राट् के अधीन होकर दिन काट रहे हैं। मिस्र, बेबीलोनी और चीनी-साम्राज्य के बाद भारत में भी साम्राज्य स्थापित हुआ। यहूदी भी ईसाई धर्म-सम्प्रदायों के संघर्षों से और बाहर रोमन साम्राज्य के दबाव से मृतप्राय हो गया ।

तीसरे युग में भारत में इंग्लैण्ड की विजय को वे मानते हैं। यह वर्ण-क्रम में ब्राह्मण (पुरोहित), क्षत्रियों के पश्चात् तीसरी वैश्य-शक्ति है जो एक नयी शक्ति है। वैश्यों के या वाणिज्य से धनवान् होनवाले समुदायों के हाथों में शासन-सूत्र पहले-पहल पाश्चात्य देशों में से इंग्लैण्ड के हाथों में आ गया। अब कहना है कि यद्यपि प्राचीन ट्रॉय और कार्थेज और उनकी अपेक्षा अर्वाचीन वेनिस और छोटे-छोटे व्यापार करनेवाले देश बड़े ही प्रतापशाली हुए थे, तो भी वैश्यों का यथार्थ अभ्युदय इन देशों में न हुआ।[1]

चौथे युग में वह आगामी शूद्र-शक्ति के बारे में कहते हैं जिसका तत्कालीन परिस्थिति में विस्तृत विवेचन सम्भव न था।

स्वामी विवेकानन्द ने विश्व-इतिहास का विश्लेषण करते हुए धर्म तथा दर्शन की व्याख्या की है तथा चार प्रमुख सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति बतलाई है। उनके अनुसार जिसकी अनुभूति चार भारतीय-सामाजिक वर्णों में पाई जाती है, जैसे— भारतीय आध्यात्मिकता का, क्षत्रिय रोमन विस्तार का, वैश्य ब्रिटिश व्यापार का तथा शूद्र अमेरिकन प्रजातन्त्र या स्वातन्त्र्य था।'[2]

भारत पर मुस्लिम-आक्रमण :

स्वामी विवेकानन्द ने जहाँ एक ओर इस्लाम-धर्म के पैग़ंबर मुहम्मद साहब के प्रति अत्यधिक सम्मान तथा आदर प्रकट किया, वहीं भारत में मुसलमानों के क्रियाकलापों की तीव्र भर्त्सना की। उन्होंने मुहम्मद साहब को 'समानता का सन्देशवाहक'[3] कहा। परन्तु मुसलमानों को 'सर्वाधिक साम्प्रदायिक एवं

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 9, पृ० 208
2. *'द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द*, भाग 3
3. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 7, पृ० 192

संकीर्ण'[1] बतलाया। मुसलमानों ने 'सर्वाधिक हिंसा का प्रयोग' किया।[2] मुसलमानों की लहरों-पर-लहरें तलवार झुमाती भारत में गिरीं।[3] ज़बरदस्ती धर्म-परिवर्तन किया, क्योंकि व्यक्तियों के लिए दो ही मार्ग थे— धर्म-परिवर्तन या मौत।[4] अतः अपने साथ हत्या और वध लेकर आये। पर उनके आने से पहले यहाँ शान्ति थी।[5]

स्वामी विवेकानन्द ने भारत में मुस्लिम-आक्रमण तथा उनके द्वारा ज़बरदस्ती धर्म-परिवर्तन का भी विवरण दिया है। न केवल भारत में, बल्कि नेपाल व काश्मीर के सन्दर्भ में भी इसकी चर्चा की है। परन्तु यह भी लिखा है कि मुसलमानों ने दक्षिण को जीतने के लिए शताब्दियों तक प्रयास किया, तब कहीं जाकर उन्हें पाँव टिकने की जगह मिली। मुसलमानों ने सामूहिक ज़बरदस्ती धर्म-परिवर्तन ही नहीं किए, बल्कि वे अपने साथ अरब के क़ानून लाए, अरब की मरुभूमि के क़ानून भारतीयों पर लादे।[6] कुरआन की दण्ड-नीति लागू की।

फ़ारसी-इतिहासकार फ़रिश्ता (1560-1620) के आँकड़े देते हुए स्वामी विवेकानन्द ने बतलाया कि पहले हिंदुओं की संख्या 60 करोड़ थी, जब अब (19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में) 20 करोड़ है।[7] साथ ही उन्होंने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात भी कही कि **'जब एक भी व्यक्ति हिंदू-धर्म से बाहर जाता है, तो उससे हमारा एक व्यक्ति ही कम नहीं होता, वरन् एक शत्रु भी बढ़ता है।'**[8]

स्वामी विवेकानन्द यह मानते हैं कि अब न वह अरब रहा और न ही मुसलमानों की वह स्थिति है। साथ ही जहाँ वे हिंदुओं को चेतावनी देते हैं तथा हिंदू-धर्म से बाहर गए लोगों के लिए मार्ग भी बतलाते हैं। चेतावनी के रूप में

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 7, पृ० 184
2. *वही*, भाग 1, पृ० 283
3. *वही*, भाग 1, पृ० 283
4. *वही*, भाग 1, पृ० 278
5. *वही*, भाग 4, पृ० 232
6. *वही*, भाग 1, पृ० 315
7. *वही*, भाग 4, पृ० 270
8. *वही*, भाग 4, पृ० 270

उन्होंने कहा, "भौतिकवाद इस्लाम-धर्म या ईसाई-धर्म या संसार का कोई वाद कदापि सफल नहीं हो सकता, यदि तुम (हिंदू) उसका प्रवेश-द्वार न खोल दो।"[1] उन्होंने यह भी कहा कि हमारे धर्म के अलावा संसार में जितने बड़े धर्म हैं, सभी ऐसे ही ऐतिहासिक जीवनियों के आधार पर खड़े हैं।[2]

जब स्वामी विवेकानन्द से किसी ने पूछा कि हिंदू-धर्म से जो बाहर निकल गए हैं, उनको वापस लाने के विषय में आपकी क्या राय है, तब उन्होंने तपाक से उत्तर दिया, "निश्चय ही वे लिए जा सकते हैं और लिए जाने चाहिये।" स्वामी जी ने अपने कथन को स्पष्ट करते हुए कहा, "निश्चय ही प्राश्यचित का अनुष्कम अपनी इच्छा से धर्म-परिवर्तन करनवालों को अपने मातृ-धर्म में लौटने के लिए उपयुक्त है, पर उनलोगों के लिए, जो विजय के द्वारा, जैसा कि काश्मीर और नेपाल में हमसे अलग कर दिए गए हैं अथवा उन नये लोगों के लिए, जो हममें सम्मिलित होना चाहते हैं, किसी प्रकार के प्राश्यचित की व्यवस्था नहीं करनी चाहिये।"[3] वे मुस्लिम-शासकों में औरंगज़ेब-जैसे प्रजाभक्षकों की तुलना में अकबर-जैसे प्रजारक्षकों की संख्या बहुत कम पाते हैं।[4]

मुस्लिम-शासनकाल में धर्म-रक्षार्थ एवं स्थापनार्थ प्रयास :

पठानों व मुग़लों द्वारा किए गए भीषण नरसंहार तथा सामूहिक धर्म-परिवर्तन के साथ-साथ भारतीय सन्तों-भक्तों तथा सुधारकों ने हिंदू-धर्म के रक्षार्थ विभिन्न प्रकार के प्रयास किये। स्वामी जी का कहना है कि उस काल में सुधारक शंकर, रामानुज, मध्व और चैतन्य हुए, जिनके कार्य निर्माणात्मक थे और उन्होंने अपने समय की परिस्थितियों के अनुकूल निर्माण किया।[5] इसी भाँति रामानन्द, कबीर, दादू, नानक ने कार्य किये। गुरु नानक को स्वामी विवेकानन्द ने स्वामी रामकृष्ण परमहंस की भाँति धर्म-प्रवर्तक के रूप में माना है।[6] इसी भाँति महाराष्ट्र में समर्थ

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 5, पृ० 63
2. *वही*, भाग 5, पृ० 79
3. *वही*, भाग 4, पृ० 270
4. *वही*, भाग 9, पृ० 203
5. *वही*, भाग 4, पृ० 256
6. *वही*, भाग 8, पृ० 129

रामदास और सन्त तुकाराम द्वारा प्रचारित कार्य को महत्त्व दिया।

स्वामी विवेकानन्द ने इस कालखण्ड में महाराष्ट्र में मराठों तथा पंजाब में सिखों द्वारा हिंदू-धर्मराज्य की आंशिक रूप से स्थापना के प्रयासों की बड़ी सराहना की। वे शिवाजी के काल को पूर्व के हज़ारों वर्षों के प्रयासों का प्रतिफल मानते हैं। उनका कथन है कि वे शिव के अवतार थे, जिसकी भविष्यवाणी पहले ही हो चुकी थी। स्वामी विवेकानन्द कविवर भूषण की *'शिवाबावनी'* को बड़ा आदर देते थे तथा उसे अपनी भावना के अनुकूल मानते थे।[1]

इसी भाँति वह पंजाब में गुरु गोविन्द सिंह तथा महाराजा रणजीत सिंह के प्रयत्नों से अभिभूत थे। विशेषकर उन्होंने हिंदू-समाज के प्रत्येक व्यक्ति को गुरु गोविन्द सिंह से प्रेरणा लेने का बार-बार आह्वान किया। उनका कथन था कि इस महात्मा ने देश के शत्रुओ के विरुद्ध लोहा लिया। हिंदू-धर्म की रक्षा के लिए अपने हृदय का रक्त बहाया, अपने पुत्रों को अपनी आँखों के सामने मौत के घाट उतरते देखा।[2] वे सृजनात्मक प्रतिभा से युक्त थे।

स्वामी विवेकानन्द से अपने एक महान् एवं विस्तृत सन्देश में गुरु गोविन्द सिंह के जीवन के सन्दर्भ में कहा[3],

> "तभी और केवल तभी तुम हिंदू कहलाने के अधिकारी हो, जब इस नाम को सुनते ही तुम्हारी रगों में शक्ति की विद्युत-तरंग दौड़ जाये।
>
> "तभी और केवल तभी तुम हिंदू कहलाने के अधिकारी हो, जब इस नाम को धारण करनेवाला प्रत्येक व्यक्ति— चाहे वह जिस देश का हो, वह चाहे तुम्हारी भाषा बोलता हो अथवा कोई अन्य, प्रथम मिलन में ही तुम्हारा सगे-से-सगा तथा प्रिय-से-प्रिय बन जाए।
>
> "तभी और केवल तभी तुम हिंदू कहलाने के अधिकारी हो सकोगे, जब तुम उनके लिए सबकुछ सहने को तत्पर रहोगे। उस महान् गोविन्द सिंह के समान, जिन्होंने हिंदू-धर्म की रक्षा के लिए अपना रक्त बहाया, रणक्षेत्र में अपने लाड़ले बेटों को मारे जाते देखा, पर जिनके लिए उन्होंने अपना तथा अपने संबंधियों का रक्त चढ़ाया, उनके ही द्वारा परित्यक्त होकर वह घायल सिंह कार्यक्षेत्र से चुपचाप हट गया और दक्षिण जाकर चिरनिद्रा में खो गया। किन्तु जिन्होंने कृतघ्नतापूर्वक उनका साथ छोड़ दिया था, उनके लिए अभिशाप का एक शब्द भी उस वीर के मुँह से न फटा। यह है आदर्श उस महान् गुरु का।"

1. एच०वी० शेषाद्रि, *'द ट्रैज़िक स्टोरी ऑफ़ पार्टीशन'*, (बैंगलुरु, 1982), पृ० 125
2. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 5, पृ० 257-258
3. *वही*, भाग 5, पृ० 270-271

स्वामी जी ने अपने शिष्यों से गुरु गोविन्द की कर्मशीलता तथा शक्ति-साधना का वर्णन किया[1] तथा उन्होंने सिखों में प्रचलित गुरु गोविन्द सिंह के एक वाक्य को दुहराया, "सवा लाख से एक लड़ाऊँ, तो गोविन्द सिंह नाम कहलाऊँ।" अर्थात् गुरु गोविन्द के नाम को सुनकर प्रत्येक मनुष्य में सवा लाख मनुष्यों से अधिक शक्ति संचरित होती थी। निष्कर्ष रूप में स्वामी विवेकानन्द का कथन था कि "गुरु गोविन्द सिंह शक्ति के साधक थे। भारत के इतिहास में उनके समान ही दृष्टान्त मिलेगा।"[2]

इसी भाँति उन्होंने पंजाब-केसरी महाराजा रणजीत सिंह के शासनकाल के बारे में यह बताया[3] कि उसने त्यागी-उपदेशकों की परम्परा को प्रभावशाली ढंग से अपनाया। उन्होंने बताया कि इस शासनकाल में त्यागियों को जो प्रोत्साहन दिया गया था, उसके कारण नीचातिनीचों को भी वेदांतदर्शन के उच्चतम उपदेशों को ग्रहण करने का अवसर प्राप्त हो गया।

अंग्रेज़ों का आधिपत्य तथा क्रूर अत्याचार :

पठानों-मुग़लों के आततायी शासन से हिंदू-समुदाय में असुरक्षा बढ़ी तथा ब्रिटिश-आगमन पर उनके जीवन में सबसे अंधकारमय काल आया।[4] भारत वर्षों

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 6, पृ० 68
2. *वही*, भाग 6, पृ० 68
3. *वही*, भाग 9, पृ० 367
4. टी०एम्०पी० माधवन व अन्य, *'हिंदुइज़्म'* (पटियाला, 1969), देखें डॉ० के०सी० शेषगिरि राव का लेख *'मॉडर्न हिंदू मूवमेंट्स'*, पृ० 87

तक पराजित होता रहा, परन्तु सबसे अन्त में अंग्रेज़ आए, जो सबसे बुरे थे।[1] स्वामी विवेकानन्द ने हिंदू-जैसी धीर जाति तथा उत्पीड़ित राष्ट्र के ऊपर अंग्रेज़ों की निर्दयता तथा दमन का विस्तृत वर्णन किया है।[2]

स्वामी विवेकानन्द ने अंग्रेज़ों की बर्बरता तथा निर्दयता को पूर्व से ही माना है। उनकी वीभत्स स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा कि 'उनकी स्त्रियों के शरीर पर कीड़े रेंगते थे... और अपने शरीर की घिनौनी दुर्गन्ध को छिपाने के लिए वे सुगन्ध लगाती थीं... अत्यन्त वीभत्स, अब भी वे केवल उस बर्बरता से निकल रहे हैं।'[3] अंग्रेज़ों के बारे में उन्होंने कहा, "तुम भारत में देखो, हिंदुओं ने क्या छोड़ा— चारों ओर आश्चर्यजनक मन्दिर; मुसलमानों ने क्या छोड़ा— भव्य भवन; अंग्रेज़ों ने क्या छोड़ा- शराब की टूटी बोतलों के टीलों के अतिरिक्त और क्या?"[4]

इसके साथ ही स्वामी विवेकानन्द ने अंग्रेज़ों में विश्वास की प्रशंसा भी की। भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के बंगाल में स्थापक लॉर्ड क्लाइव का वर्णन करते हुए उसके जीवन के बारे में लिखा[5] कि यद्यपि वह एक साधारण क्लर्क था तथा धन के अभाव व अन्य कारणों से उसने अपने सिर पर गोली खाकर आत्महत्या की भी क़ोशिश की थी, परन्तु असफल होने पर तथा उसमें आत्मविश्वास होने पर कि वह किसी बड़े कार्य के लिए पैदा हुआ है, वह भारत में कम्पनी के राज्य का संस्थापक बन सका।

प्रारम्भ में ही उन्होंने यह बल देकर कहा कि विदेशी लोग जिस देश को 'इण्डिया' कहते हैं, उसे उस देश की सन्तानें 'भारतवर्ष' कहती हैं।[6] स्वामी विवेकानन्द ने अंग्रेज़ों के द्वारा भारत के यूरोपीयकरण के विचार को 'एक असभ्य और मूर्खतापूर्णकार्य' बतलाया।[7] उन्होंने समय-समय पर सामाजिक व धार्मिक

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 8, पृ० 287
2. *वही*, भाग 8, पृ० 287
3. *वही*, भाग 8, पृ० 287
4. *वही*, भाग 8, पृ० 287
5. *वही*, भाग 5, पृ० 317
6. *वही*, भाग 7, पृ० 169
7. *वही*, भाग 4, पृ० 239

जागरण द्वारा हिंदू-चेतना की महत्ता पर बल दिया। सामाजिक दृष्टि से उनका मत है कि राजा राममोहन राय ने संकीर्णता की दीवार तोड़ी, जिसके कारण भारत में थोड़ा-सा जीवन देने लगा। वे इसे भारत के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ मानते हैं, जिससे भारत क्रमशः उन्नति की ओर बढ़ता गया।[1] राजा राममोहन राय का सुधार-कार्य यूरोप के विनाशकारी सुधारों की नकल न थे।[2]

इसी भाँति धर्म-सुधारकों ने ईसाइयत के मोर्चे को सँभाला। स्वामी विवेकानन्द का चिन्तन है कि 'यह विप्लव भारत में बार-बार हुआ, पर धर्म के नाम में, क्योंकि यह देश धर्मप्राण है, धर्म से इसकी परिभाषा और सब उद्योगों का चिह्न है, उनके अनुसार चार्वाक, जैन, बौद्ध, शंकर, रामानुज और चैतन्य के पंथ तथा कबीर, नानक, ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज आदि सभी सम्प्रदायों में धर्म की फेनमय वज्र की भाँति गरजनेवाली तरंगें सामने हैं और सामाजिक अभावों की पूर्ति उसके पीछे है।'[3] उनका निश्चित मत है कि 'यदि इनका जन्म न होता, तो आज भारत में हिंदुओं की अपेक्षा मुसलमानों और ईसाइयों की संख्या निःसन्देह बहुत अधिक होती।'[4]

स्वामी विवेकानन्द ने अपने जन्म से कुछ वर्ष पूर्व 1857-'58 के महासंघर्ष पर भी अपने विचार व्यक्त किये। इसमें उदासीनता, भयंकर अत्याचारों तथा वीरतत्त्व विभिन्न प्रकार की क्रियाकलापों पर टिप्पणी की। वे इसकी असफलता का मुख्य कारण इस काल में किए गए नाज़ायज संबंधों तथा इससे भी अधिक संघर्ष के प्रति सैनिक-उदासीनता को मानते हैं।[5] साथ ही उन्होंने झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई-जैसी वीरांगनाओं की बड़ी प्रशंसा की तथा उसे महान् बतलाया[1], जिन्होंने अंग्रेज़ों से संघर्ष किया तथा आत्मरक्षा की।

स्वामी विवेकानन्द ने 1857-'58 के महासंघर्ष के फलस्वरूप तथा सीधे

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 5, पृ० 210
2. *वही*, भाग 4, पृ० 256
3. *वही*, भाग 9, पृ० 215-216
4. *वही*, भाग 4, पृ० 216
5. *'द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द'*, भाग 8, पृ० 325-326
6. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 8, पृ० 289

ब्रिटिश शासन के काल में भयावह जन-हत्याओं का वर्णन किया। क्रूर तथा आतंकपूर्ण शासन का वर्णन करते हुए उन्होंने बताया कि किस भाँति अंग्रेज़-सिपाही भारत के देशभक्तों का ख़ून कर रहे हैं। भारतीय-बहनों को अपमानित कर रहे हैं।

ब्रिटिश आतंकपूर्ण शासन का वर्णन करते हुए मेरी को एक पत्र में उन्होंने लिखा,

> 'हमलोग घोर अन्धकार में हैं। ईश्वर कहाँ है? मेरी! तुम आशावादिनी हो सकती हो, लेकिन क्या तुम यह असम्भव है? मान लो तुम इस पत्र को केवल प्रकाशित भर कर दो, तो उस क़ानून का सहारा लेकर जो अभी-अभी भारत में पारित हुआ, अंग्रेज़-सरकार मुझे यहाँ से घसीटकर भारत ले जाएगी और बिना किसी क़ानूनी कार्रवाई के मुझे मार डालेगी। और यह मालूम है कि तुम्हारी सभी ईसाई-सरकारें इसपर खुशियाँ मनाएँगी, क्योंकि हम ग़ैर-ईसाई हैं।'[1]

भारतीय-खर्चों से यात्राकर व पेंशन को पाकर वापिस इंग्लैण्ड जाते हैं।[2] विवेकानन्द का मत है कि '19वीं शताब्दी के अन्त में जितनी डाकाजनी, जितने अत्याचार तथा दुर्बलों के प्रति जितनी निर्दयता हुई, उतनी संसार के इतिहास में शायद ही कभी हुई हो।'

स्वामी विवेकानन्द ने सीधे ब्रिटिश शासन के अंतर्गत किए गए बड़े आदर्श-वाक्यों तथा सुशासन की बातों को नकारते हुए लिखा[3] कि 'प्रेस की स्वतन्त्रता का गला घोंट दिया गया है। स्वशासन का जो थोड़ा अवसर पहले दिया गया था, शीघ्रता से छीना जा रहा है। निर्दोष-आलोचना में लिखे गए कुछ शब्दों के लिए कालेपानी की सजा दी जा रही है। लोगों को बिना किसी मुक़दमे को चलाए जेलों में ठूँसा जा रहा है और किसी को भी पता नहीं कब उनका सिर धड़

1. *विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 7, पृ० 382
2. *वही*, भाग 7, पृ० 382
3. *वही*, भाग 7, पृ० 382

से अलग कर दिया जायेगा।'

स्वामी विवेकानन्द ने यह भी कहा कि 'वे (अंग्रेज़) हमारी गरदन पर सवार हैं। उन्होंने अपने सुख-भोगों के लिए हमारे रक्त की अन्तिम बूँद भी चूस ली है। हमारी करोड़ों की सम्पत्ति अपहरणकर ले गए हैं, जबकि गाँवों और प्रान्तों में हमारी जनता भूखों मर रही थी।'[1]

स्वामी विवेकानन्द ने भारत की जनता का आह्वान किया था कि 'हमेशा याद रखो कि प्रत्येक राष्ट्र को अपनी रक्षा स्वयं करनी होगी... दूसरों से सहायता की आशा न करो।'[2]

स्वामी विवेकानन्द समय-समय पर अकाल पड़ने तथा भारतीयों की अत्यन्त गरीबी तथा विपन्नावस्था से भी परेशान होते थे। वह ब्रिटिश सरकार की उदासीनता से दुःखी थे। इतना ही नहीं, वह तत्कालीन भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की रीति-नीति के भी आलोचक थे। उन्होंने बार-बार अपने साथियों से कहा था कि वे देश में प्रचलित राजनीति से दूर रहें। दिनांक 19 नवम्बर, 1894 को न्यूयॉर्क से मद्रास, आलासिंगा पेरुमल को उन्होंने लिखा था, 'हमारे मूर्ख नौजवान अंग्रेज़ों से अधिक राजनीतिक अधिकार मांगने के लिए सभाएँ करते हैं। इसपर वे (अंग्रेज़) केवल हँस देते हैं।' विशेषकर 1899-'00 में, जब भारत में भयंकर अकाल पड़ा, तो काँग्रेस की भूमिका केवल अकाल-पीड़ितों की सहानुभूति में केवल पीड़ितों के प्रति सहानुभूति-प्रस्ताव पारित करने तक सीमित लगी, उन्हें काँग्रेस का अपने कर्तव्यों के प्रति उदासीन तथा इसका उद्देश्य विदेशी-शासन में केवल कुछ मामूली सुविधाएँ प्राप्त करना लगा तथा काँग्रेस जनता या समाज से बहुत दूर लगी।[3] एक लेखक ने व्यंग्यात्मक ढंग से इसे 'याचना मिशन' (Begging Mission)[4] बताया। स्वामी जी ने एक पत्र में लिखा, 'इन उग्र

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 8, पृ० 289
2. *वही*, भाग 3, पृ० 370
3. विनय के० राय, *'सोशियो-पॉलिटिकल मूवमेंट ऑफ़ विवेकानन्द'* (कोलकाता, 1979), पृ० 58
4. वही, पृ० 58

दुर्भिक्ष, जलप्रलय, रोग और महामारी के दिनों में तुम्हारे काँग्रेसवाले कहाँ हैं? क्या यह कहना पर्याप्त होगा कि राजव्यवस्था हमारे हाथ में दे दो और उनकी सुनेगा भी कौन ? यदि मनुष्य काम करता है तो क्या उसे मुंह खोलकर मांगना पड़ता है? यदि तुम्हारे-जैसे दो हज़ार लोग कल ज़िलों में काम करते हों, तो क्या राजनीतिक आन्दोलन के विषय में स्वयं अंग्रेज़ आगे बढ़कर तुमसे सम्मति नहीं लेंगे?'

धार्मिक तथा सामाजिक सुधार :

स्वामी विवेकानन्द ने विश्व के सन्दर्भ में विभिन्न धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन करते समय भारत तथा भारतीयों में धर्म की स्थिति तथा उसमें सुधारों की ओर ध्यान इंगित किया। उन्होंने संसार का प्रत्येक धर्म गंगा तथा फरात नदियों के मध्य भूखण्ड पर उत्पन्न बतलाया।[1] उन्होंने बल देते हुए बतलाया कि एक भी धर्म इंग्लैण्ड या अमेरिका में उत्पन्न नहीं हुआ। प्रागैतिहास-युग से चले आनेवाले केवल वर्तमान में विद्यमान तीन धर्म बतलाये। ये हैं— हिंदू-धर्म, पारसी-धर्म तथा यहूदी-धर्म।[2] यहूदी-धर्म ईसाई-धर्म को आत्मसात नहीं कर सका। ईसाई-धर्म को भी अपने जन्म-स्थान से निर्वासित कर दिया गया। पारसी-धर्म का भी निर्वासन हुआ।[3]

दिनांक 11 सितम्बर, 1893 को अपने 4 मिनट के भाषण में स्वामी विवेकानन्द ने हिंदू-धर्म को 'सभी धर्मों की माता' बतलाया।[4] उन्होंने वहाँ अपने भाषणों में हिंदू-धर्म को विश्व का सर्वश्रेष्ठ तथा वैज्ञानिक-धर्म बतलाया। उन्होंने हिंदू-धर्म को शाश्वत धर्म, सनातन धर्म अथवा विश्व-धर्म बताया।

स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय-जीवन-मूल्यों में आध्यात्मिकता तथा धर्म को सर्वोच्च बतलाया। उन्होंने भारतीयों को किसी भी क़ीमत पर भारत की प्राचीनता तथा महानतम विरासत- आध्यात्मिकता को न छोड़ने को कहा। उन्होंने कहा, "जो आध्यात्मिक नहीं, उसे मैं हिंदू नहीं मानता हूँ।" उन्होंने आह्वान किया

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 3, पृ० 126
2. *वही*, भाग 1, पृ० 7
3. *वही*, भाग 1, पृ० 7
4. *वही*, भाग 1, पृ० 3

कि भारत में समाजवादी अथवा राजनैतिक विचारों की बाढ़ आने से पहले देश में आध्यात्मिक विचारों की मूसलाधार वर्षा कर दो।"

स्वामी विवेकानन्द ने भारत की राष्ट्रीय आत्मा 'धर्म' को बतलाया। धर्म को राष्ट्र का प्राण मानते हुए वे कहते हैं, "यही हमारा राष्ट्रीय उद्देश्य है, चाहे तुम वैदिक, जैन या बौद्ध, चाहे अद्वैत, विशिष्टाद्वैत अथवा द्वैत को टटोल लो, सभी इस उद्देश्य पर एकमत हैं। इसे न छुओ और चाहे जो करो। हिंदू तनिक भी ध्यान न देगा और चुपचाप रहेगा। किन्तु यदि कहीं तुमने इस मर्मस्थल को छेड़ दिया तो सावधान, तुम सर्वनाश को निमन्त्रण दे रहे हो!" उन्होंने भारत का मेरुदण्ड राजनीति नहीं, सैन्य-शक्ति नहीं, व्यावसायिक आधिपत्य नहीं और न ही यान्त्रिक शक्ति, अपितु धर्म को ही सर्वस्व बतलाया।[1]

स्वामी विवेकानन्द ने 'हिंदू' शब्द का भी संक्षिप्त विवेचन किया है। 19वीं शताब्दी में मुख्यतः कुछ अंग्रेज़ों तथा मुसलमानों ने इसके लिए घृणास्पद शब्दावली का प्रयोग किया था। स्वामी विवेकानन्द ने 'हिंदू' शब्द का स्वाभिमान जगाते हुए कहा, "हमलोग हिंदू हैं। मैं 'हिंदू' शब्द का प्रयोग किसी बुरे अर्थ में नहीं कर रहा हूँ और न मैं उनलोगों से सहमत हूँ जो समझते हैं कि इस शब्द के कोई बुरे अर्थ हैं। प्राचीनकाल में इस शब्द का अर्थ केवल इतना था— 'सिंधु-तट के इस ओर बसनेवाले लोग।"

अमेरिका की विश्व धर्म-संसद् में स्वामी विवेकानन्द ने हिंदुत्व को सर्वोच्च स्थान दिया है। उन्होंने कहा कि हिंदुत्व ही समय के आघातों को सहता हुआ जीवित रह सकता है। यही इसकी संजीवनी-शक्ति का प्रभाव है। हिंदुत्व वस्तुतः वह केन्द्र है जहाँ विभिन्न विरोधी धाराएँ आकर मिलती हैं। हिंदुत्व का प्रकाश वेदों से युक्त है, जिन्हें विभिन्न व्यक्तियों ने विभिन्न समयों में ढूँढ़ निकाला है। निष्काम प्रार्थना करना, हिंदुत्व का सार है। विज्ञान की भाँति धर्म का भी उद्देश्य है— एकता प्राप्त करना, विभक्त से अविभक्त की ओर ले जाना। इसलिए हिंदुत्व किसी एक सिद्धान्त में विश्वास करने का प्रयास या संघर्ष नहीं है।

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 5, पृ० 35

वे सभी धर्मों में इसकी एकत्व की बात करते हैं । उनका कहना है कि वह जो हिंदुओं का ब्रह्म, पारसियों का अहुरमज्द, बौद्धों का बुद्ध, यहूदियों का जिहोवा और ईसाइयों का स्वर्गरत पिता है, सभी में एकत्व को मानते हैं।[1]

स्वामी विवेकानन्द ने कहा कि हम हिंदू केवल सहिष्णु ही नहीं हैं, हम अन्य धर्मों के साथ मुसलमानों की मस्ज़िद में नमाज़ पढ़ना, पारसियों की अग्नि की उपासना करके तथा ईसाइयों के क्रूसेड के सम्मुख नतमस्तक होकर उनसे एकात्म हो जाते हैं।[2]

विश्व के सभी धर्मों की भाँति वे भारत के विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों में उसी एकत्व की बात करते हैं। प्रसिद्ध द्वैतवादी, नैयायिक, महान् दार्शनिक उदयनाचार्य (10वीं शताब्दी) के प्रसिद्ध ग्रन्थ *'न्यायकुसुमाञ्जलि'* के मंगलाचरण को उद्धृत करते हुए स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, "वेदांतियों का जो ब्रह्म है, द्वैतवादियों का जो ईश्वर है, सांख्य में जो पुरुष है, मीमांसाशास्त्र में जो 'कारण' है, बौद्धों का जो 'धम्म' है, नास्तिकों का जो शून्य है और प्रेमियों के लिए जो असीम प्रेम है, वही हम सभी को अपनी दयापूर्ण छत्रच्छाया में रक्षा करे।"[3]

संक्षेप में स्वामी विवेकानन्द ने ऐतिहासिक प्रमाणों, अकाट्य तर्कों तथा अथाह भावपूर्ण पृष्ठभूमि से भारतीयों को व्यावहारिक वेदांत का ज्ञान दिया। उन्होंने भारतीयों को गौरवपूर्ण अतीत के प्रति जाग्रत् किया। साथ ही चमत्कारों से विश्वासी, अंधविश्वासी तथा कट्टरपंथी न बनने को कहा। वह धर्म को तर्क तथा अनुभूति के आधार पर आँकने को कहते हैं।

स्वामी विवेकानन्द ने भारत पर ईसाइयत के आक्रमणों की कटु आलोचना के लिए हिंदुत्व के मानवतावादी-आधारों का आश्रय लिया। उनका विचार था कि हिंदू मूर्तिपूजक अवश्य है, किन्तु अन्य मूर्ति की निन्दा नहीं करता, न ही किसी को ऐसा करने का अधिकार है। उन्होंने धर्मांधता का विरोध किया। उन्होंने बतलाया कि धर्मांधता वहीं आती है, जहाँ मनुष्य किसी एक निश्चित

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 1, पृ० 21
2. *वही*, भाग 1, भूमिका
3. *वही*, भाग 1, पृ० 412

सिद्धान्त में बंध जाता है।

स्वामी विवेकानन्द ने धर्म का ऐतिहासिक विश्लेषण करते हुए भारतीयों की राष्ट्रीय आत्मा 'धर्म' बतलाया। उन्होंने कट्टरपंथी और धर्मांध न बनने का आग्रह किया। हिंदू-धर्म के उनके चिन्तन को आधुनिक भाषा में कहा जाए, तो उन्होंने बतलाया कि पंथनिरपेक्षता स्वाभाविक रूप से हिंदू-धर्म का अंग है। उन्होंने साम्प्रदायिकता-संकीर्णता का कोई भी स्थान हिंदू-धर्म में नहीं माना। उन्होंने यह भी कहा कि इंग्लैण्ड में धर्म को राजनीति के माध्यम से समझा जाता है, जबकि भारत में राजनीति को भी धर्म की भाषा में समझा जाता है। अतः जीवन में राजनीति का सीमित महत्त्व है तथा धर्ममय राजनीति ही भारतीय-जनमानस के चिन्तन का केन्द्र-बिन्दु है।

संक्षिप्त में स्वामी विवेकानन्द ने हिंदू-धर्म को विश्व की सबसे प्राचीन परम्परा का धर्म बताया, जो सभी धर्मों की जननी है। एक एक ऐसा धर्म, जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति- दोनों की शिक्षा दी है। यह सभी धर्मों के प्रति सहिष्णु ही नहीं, बल्कि सभी धर्मों को समान मानता है। इसने समस्त धर्मों और देशों के उत्पीड़ितों तथा शरणार्थियों को आश्रय दिया है।[1]

स्वामी विवेकानन्द ने अपने अनेक प्रवचनों में लम्बे समय से चली आ रही सामाजिक समस्याओं तथा प्रश्नों पर भी अपने विचार व्यक्त किये। उन्होंने भारत की गरीबी, छुआछूत की समस्या, महिलाओं की दशा, जाति-प्रथा की जटिलता तथा भारतीयों की विदेश-यात्रा पर प्रतिबन्ध आदि समस्याओं पर भी ध्यान दिया। उन्होंने सर्वाधिक ध्यान भारतीयों की गरीबी की ओर दिया। सामाजिक सुधारों में उन्होंने लोगों की अज्ञानता मिटाने, अनाथों की सहायता और गरीबी दूर करने की बात कही। उनका मत है कि नर-सेवा ही नारायण की सेवा है। शिक्षा व गरीबों व अनाथों की सहायता को वे मुख्य सामाजिक धर्म मानते हैं। वह कहते हैं, "जबतक भारत में लाखों लोग निर्धनता और अज्ञानता से ग्रसित होकर जीवन व्यतीत कर रहे हैं, तबतक मैं प्रत्येक मनुष्य को 'देशद्रोही' कहूँगा, जो उनके बल पर ही शिक्षित होने के बाद उनके प्रति कोई ध्यान नहीं देते

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 1, पृ० 3

हैं।"[1]

उन्होंने भारत के अमीरों तथा शिक्षित-समुदाय को कठोरता से चेतावनी दी। अमीरों[2] को जहाँ 'राष्ट्र की कब्र', 'चलते-फिरते शव' कहा, वहाँ पढ़े-लिखे लोगों[3] को लताड़ते हुए 'देशद्रोही' कहा।

उन्होंने पुनः सार रूप से कहा कि "विश्वविद्यालय की उपाधि लेनेवाले कुछ हज़ार व्यक्तियों से राष्ट्र का निर्माण नहीं हो सकता। धनवानों से राष्ट्र नहीं बनता। यह सच है कि हमारे पास सुअवसर कम है, परन्तु फिर भी तीस करोड़ व्यक्तियों को खिलाने और कपड़ा पहनाने के लिए, उन्हें आराम से रखने के लिए, बल्कि उनको ऐशो-आराम से रखने के लिए हमारे पास पर्याप्त साधन है। हमारे देश के 90 प्रतिशत अशिक्षित हैं। किसे चिन्ता है? इनलोगों को! इन देशभक्त कहलानेवालों को !!"[4]

स्वामी विवेकानन्द ने बड़ी दृढ़ता तथा विश्वास के साथ कहा कि मानव की सेवा ही ईश्वर की पूजा है।[5] पहले देवता देश के लोग हैं। मानो कि नारायण एक भिखारी के रूप में घूम रहा है।

स्वामी विवेकानन्द ने भारत में प्राचीन काल से चली आई जाति-प्रथा की समीक्षा विश्व के सन्दर्भ में की। उनका कहना है कि जाति-प्रथा का धर्म से कोई संबंध नहीं है। किसी भी मनुष्य का व्यवसाय पैतृक होता है।[6] उन्होंने जाति-प्रथा को वर्तमान काल की जटिलता के रूप में न देखा और न ही स्वीकार

1. शिवेन्द्र कुमार कश्यप व अन्य (संपादित), *'सेविंग ह्यूमनिटी : स्वामी विवेकानन्द पर्सपैक्टिव'* (पंतनगर, 2012), पृ० 18
2. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 3, पृ० 135
3. *वही*, भाग 3, पृ० 330
4. *वही*, भाग 3, पृ० 330
5. *'द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द'*, भाग 1, पृ० 76-77; *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 3, पृ० 246; भाग 7, पृ० 247; भाग 6, पृ० 273-274, 319; *'ईस्टर्न एण्डवेस्टर्न एडमाइरसर्स रेनीनीसेन्सन ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द'*, पृ० 330; शिवेन्द्र कुमार कश्यप व अन्य, पूर्वोद्धृत, पृ० 123
6. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 1, पृ० 265

किया। व्यापक रूप से विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि जाति-प्रथा को लाखों में से एक भी नहीं समझता। संसार में एक भी देश ऐसा नहीं है, जहाँ जाति-भेद न हो।[1] भारत की योजना है कि प्रत्येक को ब्राह्मण (ज्ञानवान्) बनाया जाए, सदैव नीचे के वर्णों को ऊपर उठाने का प्रयत्न किया। उन्होंने यह भी कहा कि कुछ अंग्रेज़ हैं, जिसमें भारत के प्रति सहानुभूति का अभाव है और जो न ही इसके इतिहास से अनभिज्ञ हैं, वे जाति-प्रथा को मुख्य रूप से लाभकारी मानते हैं।'[2]

स्वामी विवेकानन्द ने विश्व के सन्दर्भ में ही पुरोहित (ब्राह्मण), क्षत्रिय (राजपूत), वैश्य तथा शूद्र का विचार किया। परन्तु शूद्र की दारुण स्थिति से चेतावनी देते हुए कहा कि "शूद्र, जिनके पास शारीरिक परिश्रम पर ही ब्राह्मण का आधिपत्य, क्षत्रियों का ऐश्वर्य और वैश्यों का धनधान्य निर्भर है, वे कहाँ हैं? वे तो भारत में 'चलायमान श्मशान' तथा दूसरे देश में 'भारवाही पशु' की भाँति हैं।"[3]

स्वामी विवेकानन्द ने इतिहास तथा पुराणों से उद्धरण देते हुए ऐसे कई महापुरुषों, जैसे— वसिष्ठ, नारद, सत्यकाम, व्यास, कृप, द्रोण, कर्ण आदि के नामों का उल्लेख किया है जो जन्म से अति सामान्य थे, परन्तु इन सबने अपनी विद्या या वीरता के प्रभाव से ब्रह्मत्व या सार्थत्व प्राप्त किया था।[4] उनका विश्वास था कि आध्यात्मिक शक्तियों या भक्ति के लिए किसी उच्च जाति का होना आवश्यक नहीं है। उनके अनुसार आध्यात्मिक जीवन में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है और न ही किसी को अन्य जाति से घृणा करने का अधिकार है।

स्वामी विवेकानन्द ने समाज में प्रचलित छुआछूत की कटु आलोचना की। वे स्वयं अछूतों के आश्रम में गये। उनके हुक्के में घूँट भरकर प्रेम दर्शाया। मार्च, 1899 में उन्होंने अनेक युवकों को इसके निवारण के लिए आह्वान किया।

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 4, पृ० 253
2. *वही*, भाग 4, पृ० 239
3. *वही*, भाग 9, पृ० 219
4. *वही*, भाग 9, पृ० 221

उन्होंने कहा[1], "हम हिंदू भी नहीं हैं और वेदांती भी नहीं। असल में हम हैं 'छुआछूत-पंथी'। रसोईघर हमारा मन्दिर है। पकाने के बरतन हमारे उपास्य देवता हैं और 'मत छुओ, मत छुओ' हमारा मंत्र है। समाज के इस अन्ध कुसंस्कार को शीघ्र ही दूर करना होगा।" उल्लेखनीय है कि स्वामी विवेकानन्द के एक आलोचक ने जब उन्हें 'शूद्र' कहा और पूछा कि एक शूद्र को संन्यासी होने का क्या अधिकार है, तो उन्होंने इसका सक्रमात्मक उत्तर दिया।[2] सम्भवतः गाँधीजी ने अस्पृश्यता-निवारण की प्रेरणा स्वामी विवेकानन्द से ली थी, जिन्होंने अपने रचनात्मक कार्यक्रमों में प्रमुखता दी थी।

स्वामी विवेकानन्द ने किसी व्यक्ति के विदेश-यात्रा करने पर जाति-बहिष्कृत करने की प्रथा का खण्डन किया। बल्कि उन्होंने भारतीयों के विदेश-भ्रमण को प्रोत्साहन दिया तथा इसे एक 'कर्तव्य' बतलाया। परन्तु यह भी कहा कि हमने विदेशियों से सीखा, पर उसे पचा न सके। उन्होंने जापानियों का उदाहरण देकर कहा कि वे भी यूरोप गए, पर यूरोपीय न बन सके। परन्तु भारतीयों में ऐसे हैं, जो पाश्चात्य रंग में रंग गए हैं तथा उन्हें एक 'संक्रामक रोग'[3] सा हो गया। स्वामी विवेकानन्द ने इससे बचने के लिए कहा। इसी भाँति उन्होंने गुलामी-प्रथा का विरोध किया। परन्तु उसका वह स्वरूप भारत में नहीं हो पाया जो अमेरिका में नीग्रो के साथ हो रहा था। उन्होंने इसे 'जानवरों से भी बदतर'[4] बतलाया।

स्वामी विवेकानन्द ने अपने जीवन के ध्येय में धर्म तथा आध्यात्मिकता के पश्चात् दूसरे स्थान पर महिला-जीवन से संबंधित समस्याओं पर चिन्तन को बतलाया। अतः उन्होंने देश-विदेश में अपने भाषणों में महिलाओं की दशा और दिशा पर अनेक बार चर्चा की। उन्होंने भारतीय-समाजदर्शन का मूलाधार 'महिला की प्रतिष्ठा' तथा उसे 'संस्कारों का सर्वोच्च स्थल' बतलाया। वह

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 5, पृ० 64
2. *वही*, भाग 5, पृ० 106
3. *वही*, भाग 8, पृ० 234
4. *'द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द'*, भाग 3, पृ० 214

भारतीय-महिला को 'संस्कृति का रसद'[1] तथा 'सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति की अनुक्रमणिका'[2] मानते हैं। उन्होंने महिला को किसी भी राष्ट्र की उन्नति का सर्वोत्कृष्ट तापमान-मापक यन्त्र (थर्मामीटर) माना है।[3]

माँ के स्थान की श्रेष्ठता बतलाते हुए स्वामी विवेकानन्द ने अपने भाषणों में कहा, "भारत में स्त्री-जीवन का आरम्भ और अन्त 'मातृत्व' में ही होता है।[4] विश्व में 'माँ' नाम से पवित्र और कोई नाम नहीं होता।[5] मातृत्व में ही स्वार्थशून्यता, सहिष्णुता तथा क्षमाशीलता का भाव निहित है।[6] मातृत्व ईश्वर का दिव्य रूप है। वे मातृत्व में सभी श्रेष्ठ गुणों का प्रकटीकरण मानते हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि मातृत्व निश्चय ही पितृत्व से उच्च तथा महान् है। उन्होंने इसे भारतीय-इतिहास तथा सभ्यता की महान् देन माना।

स्वामी विवेकानन्द ने प्राचीन इतिहास में महिलाओं के दिव्य तथा भव्य चित्रण का उल्लेख किया है। उन्होंने भारतीय-हिंदू-विवाह को एक पवित्र बन्धन बतलाया है। स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका व भारत में महिला के प्राचीन आदर्शों को आर्ष-ग्रन्थों से उद्धृत करते हुए उसे 'सहधर्मिणी' बतलाया है[7], जिसमें विवाह के अवसर पर पवित्र अग्नि प्रज्ज्वलित की जाती थी। वे जीवनभर इस अग्नि में साथ-साथ आहुति देते हुए इकट्ठे प्रार्थना करते। यह अग्नि तबतक जलती रहती, जबतक वे साथ-साथ रहते तथा किसी की भी मृत्यु होने पर उसके शरीर का दाह-संस्कार भी इसी अग्नि से करते थे। परन्तु कालान्तर में इसमें परिवर्तन हुआ।

स्वामी विवेकानन्द ने स्त्री तथा पुरुष में किंचित भी भेद स्वीकार नहीं किया है। उन्होंने बतलाया कि हज़ारों वर्षों से भारत में महिला का सम्पत्ति पर

1. स्वामी तथागतानन्द, *'मैडीटेशन ऑन स्वामी विवेकानन्द'* (न्यूयॉर्क), पृ० 200
2. *वही*, पृ० 200
3. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 1, पृ० 324
4. *वही*, भाग 1, पृ० 309
5. *वही*, भाग 1, पृ० 309-310
6. *वही*, भाग 1, पृ० 311
7. देखें पत्र, *'ब्रोकलियन स्टैण्डर्ड यूनियन'*, 21 जनवरी, 1895

अधिकार था तथा पति की मृत्यु हो जाने पर वह ही सम्पत्ति की पूर्ण अधिकारिणी होती थी। दोनों को पूर्ण समानता के अवसर तथा पूर्ण सन्तुलन था।

स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय-इतिहास की आदर्श महिलाओं का अपने भाषणों में बार-बार वर्णन किया है। भारतीय-स्त्री-चरित्र को आदर्श माँ सीता के चरित्र से उत्पन्न बतलाया। माँ सीता के चरित्र को 'पवित्र से पवित्रतम' बतलाया।[1] गार्गी को विश्व की श्रेष्ठतम बुद्धिमान महिलाओं में कहा गया। सावित्री को आध्यात्मिक शक्ति तथा निर्भीकता का स्वरूप बतलाया तथा झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई को शारीरिक क्षमता तथा बल की द्योतक बतलाया। संघमित्रा, लीला, अहल्याबाई, मीराबाई आदि विदुषी-महिलाओं की महान् परम्परा बताया।[2]

भारत में महिलाओं के उच्च सम्मान तथा गरिमा की अनुभूति विश्व के लोगों को तब हुई, जब 11 सितम्बर, 1893 को शिकागो में आयोजित विश्व धर्म सम्मेलन में स्वामी विवेकानन्द ने अपने भाषण में 'अमेरिका की बहनो तथा भाइयो' कहकर सम्बोधित किया। वस्तुतः यह हिंदू-समाज की महिलाओं तथा जनमानस के प्रति सम्मान की पहली अभिव्यक्ति थी।

स्वामी विवेकानन्द को भारत की महिलाओं की उच्चतर स्थिति विश्व के अन्य स्थानों से श्रेष्ठ लगी। उन्होंने कहा कि पाश्चात्य देशों में चचेरे भाई-बहन में विवाह पूर्णरूप से वैध है, जबकि भारत में यह ग़ैर-क़ानूनी ही नहीं, व्यभिचार-जैसा एक महान् अपराध माना जाता है।[3] स्वामी जी इस बात से बड़े आश्चर्यचकित थे कि ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज, हार्वर्ड तथ येल विश्वविद्यालयों के द्वार महिलाओं के लिए तब भी बन्द थे, जब भारत में 20 वर्ष पूर्व कलकत्ता विश्वविद्यालय में इसके द्वार महिलाओं के लिए खोल दिए गए थे।[4]

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 2, पृ० 150
2. *वही*, भाग 4, पृ० 268
3. *वही*, भाग 1, पृ० 308
4. *वही*, भाग 1, पृ० 321

स्वामी विवेकानन्द ने आर्यों तथा सेमेटिक-धर्मावलम्बी लोगों के महिला-संबंधी विचार परस्पर विपरीत लगे। सेमेटिक-लोग उपासना में महिलाओं की उपस्थिति, घोर विघ्नस्वरूप मानते हैं। महिलाओं को किसी प्रकार के धार्मिक कार्य का अधिकार नहीं है। यहाँ तक कि आहार के लिए पक्षी मारना भी उनके लिए निषिद्ध है।[1] जबकि आर्यों में सहधर्मिणी के बिना कोई भी धार्मिक कार्य नहीं होता। उन्होंने यह भी कहा कि पाश्चात्य नारी के कन्धों पर क़ानूनी दृढ़ता से बँधे हुए बहुत-से बोझ हैं, जिनका हमारी नारियों को पता भी नहीं है।[2] उन्होंने बतलाया कि सेमेटिक (ईसाई) स्त्री को पुरुष के समान स्थान नहीं दिया जाता। स्त्री के लिए सबकुछ किया, किन्तु एक भी धर्मदूत नहीं बनाया। उनका सेमेटिक होना ही निःसन्देह इसका कारण था। महान् आर्यों तथा बौद्धों ने स्त्री को सदैव पुरुषों के समान रखा है। उनमें धर्म-लिंग भेद का कोई अस्तित्व न था। वेदों और उपनिषदों में स्त्रियों ने सर्वोत्तम सत्य की शिक्षा दी है। और उनकी वही श्रद्धा प्राप्त हुई है जैसा कि पुरुषों को।[3]

स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय-समाज की अन्य देशों से तुलना करते हुए बतलाया कि भारत में 'स्त्री' कहते ही 'मातृत्व' का ध्यान आता है[4], जबकि पश्चिम में स्त्री 'पत्नी' है।[5] उन्हें आश्चर्य हुआ कि विदेशों में पुत्र भी अपनी माता का नाम लेकर पुकारता है।[6] इसके साथ जहाँ उन्होंने एशिया-माइनर में ईसाई-बिशपों के अपने समकालीन दिनों में हरम पाए, वहाँ मुस्लिम-महिलाओं की अवस्था और भी ज़्यादा दुःखद है।[7]

स्वामी विवेकानन्द पाश्चात्य देशों में अविवाहित युवा-स्त्रियों के कष्टों तथा दुरावस्था से अत्यन्त पीड़ित हुए। उन्होंने एक स्थान पर मिशनरियों तथा

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 4, पृ० 266
2. *वही*, भाग 4, पृ० 268
3. *वही*, भाग 1, पृ० 309
4. *वही*, भाग 5, पृ० 133
5. *वही*, भाग 1, पृ० 310
6. *वही*, भाग 1, पृ० 319
7. *'द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द'*, भाग 2 (कोलकाता, 2005), पृ० 506

चर्च की महिलाओं का भी ज़िक्र किया। इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने बतलाया कि जब कोई महिला अपने लिए पति खोजने का अधिक-से-अधिक प्रयत्न करती है, तो वह सभी समुद्रतटीय स्नानों के स्थानों पर जाती है और किसी पुरुष को पकड़ पाने के लिए सभी प्रकार के छल तथा छद्म काम में लाती है। जब वह अपने प्रयत्नों में असफल हो जाती है, जैसा कि अमेरिका में कहते हैं, वह 'ओल्ड मैड' हो जाती है, वह चर्च में सम्मिलित हो जाती है। उनमें से कुछ चर्च के काम में उत्साह प्रदर्शित करती हैं। ये चर्च-महिलाएँ बहुत 'दुराग्रही' होती हैं। वे यहाँ पादरियों के कठोर अनुशासनमें रहती हैं। वे और पादरी मिलकर पृथ्वी को नरक बनाते हैं और धर्म की मिट्टी में पलीत करते हैं।[1]

संक्षेप में स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय तथा पाश्चात्य महिलाओं की समस्याओं तथा कष्टों का ऐतिहासिक अध्ययन तथा अनुभूति के आधार पर विश्लेषण किया। विशेषकर भारतीय-महिलाओं की उत्तरोत्तर पतनोन्मुख दशा, पिछड़ेपन तथा दुरावस्था से चिन्तित पाया। उन्होंने बाल-विवाह को बन्द करने[2] तथा महिलाओं में शिक्षा को विकसित करने, महिलाओं से तिरस्कारपूर्ण व्यवहार आदि बुराइयों से मुक्त करने का आह्वान किया।

इतिहास से पाठ तथा आह्वान :

स्वामी विवेकानन्द ने पिछले सौ वर्षों की पराधीनता का कारण आत्मविस्मृति एवं पश्चिम का अन्धानुकरण बताया। पश्चिम का जादू लोगों पर बुरी तरह सवार होता देखकर उन्होंने कहा, "एक ओर नया भारत कहता है पाश्चात्य भाव, पाश्चात्य भाषा, पाश्चात्य खानपान और पाश्चात्य आधार को अपनाकर हम पाश्चात्य राष्ट्रों के समान शक्तिशाली हो सकेंगे। दूसरी ओर पुरातन भारत कहता है, 'हे मूर्ख ! कहीं नकल करने से भी दूसरों का भाव अपना हुआ है? बिना स्वयं कमाए कोई वस्तु अपनी नहीं होती। क्या सिंह की खाल पहनकर गधा भी सिंह बन सकता है? विदेश का अमृत हमारे लिए विष हो सकता है। भारत कभी यूरोप नहीं बन सकता, न बनना चाहिये। भारत सदा भारत रहना चाहिये।" उन्होंने

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 4, पृ० 250-251
2. *वही*, भाग 8, पृ० 233

पाश्चात्य जगत् का उद्देश्य व्यक्तिगत स्वाधीनता, भाषा, अर्थकरी विद्या और आय राजनीति बतलाया। जबकि भारत का उद्देश्य मुक्ति, भाषा वेद' और उच्च त्याग बतलाया।[1]

स्वामी विवेकानन्द भारत को केवल मिट्टी, पत्थर या भोगभूमि न मानकर पुण्यभूमि, तपोभूमि, साधनाभूमि मानते थे। उन्होंने देश के प्रत्येक नर-नारी, युवकों— सभी का आह्वान करते हुए कुछ समय के लिए सभी देवी-देवताओं को भूलकर भारतमाता की आराधना करने को कहा। उन्होंने हुंकारते हुए कहा, "आगामी पचास वर्षों तक तुमलोग एकमात्र स्वर्गादपि गरीयसी जननी जन्मभूमि की आराधना करो। इन वर्षों में दूसरे देवताओं को भूल जाने में कोई हानि नहीं है। दूसरे देवतागण सो रहे हैं। इस समय तुम्हारा एकमात्र देवता है तुम्हारा राष्ट्र! सभी स्थानों में इसका हाथ है। अनेक सतर्क कर्ण सभी जगह मौजूद हैं। यह सभी स्थानों में व्याप्त होकर विद्यमान है।"[2]

स्वामी विवेकानन्द का आह्वान भारत के सभी लोगों के लिए था। उन्होंने सभी को गर्व से भारतवासी होने का गर्व करने को कहा था। उन्होंने घोषणा की थी कि वे कहें, "मैं भारतवासी हूँ। प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है। भारतवासी मेरा प्राण है। भारत के देवी-देवता मेरे ईश्वर और बुढ़ापे की काशी है। भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है। भारत के कल्याण में ही मेरा कल्याण है।"[3]

स्वामी विवेकानन्द ने देश की भावी पीढ़ी में देशभक्ति, स्वाभिमान, आत्मविश्वास तथा आत्मगौरव जाग्रत् किया था। उन्होंने न केवल भारत में, अपितु विश्व में लाखों व्यक्तियों को भारतीय-संस्कृति, धर्म, दर्शन, अध्यात्म तथा इतिहास से प्रेरित तथा आकर्षित किया था।

राष्ट्र-प्रेरक स्वामी विवेकानन्द :

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में जब कोई भी राजनैतिक दल ऐसा न था, जो

1. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 9, पृ० 215
2. *वही*, भाग 5, पृ० 193
3. *वही*, भाग 3, पृ० 228

लोकशक्ति का निर्माण कर सके, स्वामी विवेकानन्द ने आध्यात्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक जागरण से पराधीन भारत में नवचेतना तथा नवजीवन प्रदान किया था। यद्यपि स्वामी जी का स्वयं का जीवनकाल 1863-1902 तक, यानि अत्यल्प अर्थात् कुल 39 वर्षों का था, परन्तु भारत की स्वतन्त्रता से पूर्व कोई भी ऐसा भावी नेता, क्रान्तिकारी युवक, विद्वान् लेखक, विचारक, चिन्तक, सन्त तथा धार्मिक सुधारक न होगा, जो स्वामी जी के विचारों से प्रेरित व आन्दोलित होकर आगे न बढ़ा हो।

स्वामी विवेकानन्द के छात्र-जीवन में उनके कॉलेज़ के प्रिंसिपल विलियम हेस्टी उन्हें 'एक महान् प्रतिभाशाली'[1] छात्र मानते थे, जो उन्होंने जर्मनी के विश्वविद्यालयों में न देखा। मिसेज़ एस्०के० ब्लौडगेस्ट[2] को, जिसने शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन में प्रथम दिवस भाग लिया था, उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ था कि स्वामी जी के भाषण का पहला सम्बोधन "अमेरिका की बहनो और भाइयो" सुनकर वहाँ के सभी उपस्थित सात हज़ार श्रोता श्रद्धावश खड़े हो गए थे।[3] अमेरिकी लोग स्वामी विवेकानन्द को एक 'तूफ़ानी हिंदू' (the cyclonic Hindu) या 'हिंदू-नेपोलियन' कहते थे।

अमेरिका के प्रसिद्ध पत्र *'द न्यूयॉर्क हेराल्ड'* ने उन्हें 'विश्व धर्म सम्मेलन का सबसे महान् व्यक्ति' कहा था। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने फ्रांसीसी-विद्वान् रोमां रोलां (1866-1945) को भारत के बारे में जानकारी के लिए स्वामी विवेकानन्द के साहित्य को पढ़ने के लिए प्रेरित किया था, जिसमें रोमां रोलां को स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में विद्युत-जैसी तरंगें ध्वनित करती प्रतीत हुई थीं[4] तथा उन्हें भारतीय-चेतना, ऐक्य तथा भाग्य का प्रतीक कहा।[5]

1. *'स्वामी विवेकानन्द : हिज़ ईस्टर्न एण्ड वेस्टर्न डिसाइप्लस'*, अद्वैत आश्रम, (कोलकाता, 1976), पृ० 146
2. स्वामी चेतनानन्द, पूर्वोद्धृत, पृ० 44
3. वही, पृ० 44
4. रोमां रोलां, *'लाइफ़ ऑफ़ विवेकानन्द'* (पंचम सस्करण, कोलकाता, 1965), पृ० 146; स्वामी तथागतानन्द, *'मैडीटेशन ऑन स्वामी विवेकानन्द'* (न्यूयॉर्क, 1994), पृ० 195
5. *वही*, पृ० 243

महात्मा गाँधी ने लिखा कि स्वामी विवेकानन्द की जानकारी के लिए किसी परिचय की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने स्वयं विवेकानन्द-साहित्य का कई बार अध्ययन किया। उन्होंने माना कि मेरा देश-प्रेम का विचार स्वामी विवेकानन्द के विचारों को पढ़कर हज़ार गुणा बढ़ गया।[1] लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक स्वामी विवेकानन्द से भेंट करने बेलूर मठ गए तथा तिलक को उनमें दूसरा शंकराचार्य दिखा। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने किशोरावस्था में विवेकानन्द-साहित्य पढ़ लिया, जिसने उनके जीवन में क्रान्तिकारी-परिवर्तन ला दिया था।[2] नेताजी ने स्वयं माना कि तब मेरे अन्दर एक क्रान्ति आई तथा प्रत्येक वस्तु में उथल-पुथल आयी।[3] उनका विचार था कि यदि विवेकानन्द का शतांश भी कोई पद ले ले, उसका जीवन सफल हो जाए। उन्हें स्वामी जी में 'बुद्ध का हृदय तथा शंकराचार्य की बुद्धि' का समन्वय प्रतीत हुआ। भारत की स्वाधीनता के लिए उन्होंने स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि तथा शिवाजी का मार्ग बताया।[4] पं० जवाहरलाल नेहरू ने बच्चों तथा युवकों के अनुकरण के लिए एकमात्र व्यक्ति स्वामी विवेकानन्द बतलाया।[5]

महर्षि अरविन्द ने स्वयं माना कि अलीपुर जेल में लगभग 15 दिनों तक स्वप्न में उन्होंने स्वामी विवेकानन्द से 'अति मन की स्थिति' का ज्ञान प्राप्त किया।[6] प्रसिद्ध इतिहासकार सर यदुनाथ सरकार ने विवेकानन्द-साहित्य को पढ़कर अपने को क्रान्तिकारियों से जोड़ा।[7] कुछ गुप्त दस्तावेजों से ज्ञात होता है कि क्रान्तिकारी शचीन्द्रनाथ सान्याल तथा बंगाल व बिहार के अनेक

1. टी०एम्०पी० माधवन व अन्य, *'हिंदुइज़्म'* (पटियाला, 1969), पृ० 195
2. सतीश चन्द्र मित्तल, *'साम्यवाद का सच'* (नयी दिल्ली), पृ० 64
3. गिरीश कुमार बोस, *'नेताजी कलेक्टेड वर्क्स'*, भाग 1 (कोलकाता, 1980), पृ० 38; एस०सी० बोस, *'एन इण्डियन पिलिग्रिम'* (लन्दन, 1965)
4. सतीश चन्द्र मित्तल, *'साम्यवाद का सच'*, पृ० 64
5. टी०एम्०पी० माधवन व अन्य, *'हिंदुइज़्म'* (पटियाला, 1969), पृ० 195
6. एम्०पी० पण्डित, *'श्रीअरविन्द'* (नयी दिल्ली, 1985), पृ० 128
7. देखें, एन०एम०पी० श्रीवास्तव, *'राईज़ ऑफ़ मिलिटेंट नेशनलिज़्म इन बिहार : सर यदुनाथ सरकार विद बिहार रेवल्यूशनरीज़'* (पटना, 2004)

क्रान्तिकारियों के प्रेरणा-केन्द्र स्वामी विवेकानन्द ही थे।[1] महान् उपन्यासकार एवं कथाकार प्रेमचन्द ने देश के अनेक युवकों को स्वामी विवेकानन्द को पढ़ने के लिए प्रेरित किया था। वस्तुतः उनके *'वरदान'* नामक उपन्यास का नायक बालाजी विवेकानन्द-सा ही रूप है।[2] राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' के शब्दों में 'श्री रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द एक ही जीवन के दो अंग, एक ही सत्य के दो पक्ष हैं। रामकृष्ण अनुभूति थे तथा विवेकानन्द उसकी व्याख्या थे। रामकृष्ण हिंदू-धर्म की गंगा हैं तो विवेकानन्द इस गंगा की भागीरथी थे। इन दोनों का मिलन रहस्यवाद और बौद्धिकवाद का सम्मिश्रण था।[3] अतः एक बीज थे तो दूसरा उसका विकास था। सार-रूप में जिसने भी विवेकानन्द को पढ़ा, उनसे प्रेरित हुए बिना नहीं रहा। स्वामी विवेकानन्द राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक श्री माधवराव सदाशिवराव गोळवळकर उपाख्य गुरुजी[4] तथा उनके लाखों अनुयायियों के प्रेरक रहे। पंजाब और हरियाणा के पूर्व मुख्य न्यायाधीश डॉ० एम्० रामा जॉयस ने लिखा है, 'ऐसा लगता है कि सन् 1925 में डॉ० हेडगेवार (डॉ० केशवराव बलिराम हेडगेवार) ने हिंदू-समाज के जागरण का कार्य वहाँ से सँभाला, जहाँ से विवेकानन्द ने इसे छोड़ा था और श्री गुरुजी (श्री माधवराव सदाशिवराव गोळवळकर) के हाथ में दायित्व सौंपने से पूर्व उन्होंने अपने जीवनकाल में ही अद्भुत सफलता प्राप्त कर ली थी।'[5]

दिसम्बर, 1896 ई० में स्वामी जी ने न्यूयॉर्क में 'वेदांत-सोसायटी' की

1. देखें, एन०एम०पी० श्रीवास्तव, *'राईज़ ऑफ़ मिलिटेंट नेशनलिज़्म इन बिहार : सर यदुनाथ सरकार विद बिहार रेवल्यूशनरीज़'* (पटना, 2004), पृ० 77-78
2. शैलेश जोशी, *'प्रेमचन्द की उपन्यास-यात्रा'* (अलीगढ़, 1976), पृ० 127; डॉ० सरोजिनी नौटियाल, *'प्रेमचन्द एण्ड इण्डियन नेशनलिज़्म'* (आगरा छावनी, 2003), पृ० 39
3. रामधारी सिंह 'दिनकर', *'संस्कृति के चार अध्याय'*
4. श्री गुरुजी के विचारों के लिए देखें *'श्री गुरुजी समग्र दर्शन'*, खण्ड 4 (नागपुर, 1974), पृ० 125-139; वही, खण्ड 3 (नागपुर, 1978), पृ० 85-86; देखें परिशिष्ट
5. के० सूर्यनारायण राव (संकलन-संपादन) *'नेशनल रीज़ेनरेशन : द विज़न ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द एण्ड द मिशन ऑफ़ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ'* (चेटपेट, चेन्नई, 2012), देखें डॉ० एम्० रामा जॉयस द्वारा पुस्तक का परिचय

स्थापना की थी।[1] उनके अनेक विदेशी तथा स्वदेशी-शिष्य थे। प्रमुख विदेशी-शिष्यों में कैप्टन सेवियर तथा उनकी पत्नी सिस्टर निवेदिता, ईन्टी स्टर्डी, जे०जे० गोडविन[2] आदि थे । बाद में शीघ्र ही विदेशों में वेदांत-समाज का जाल-सा फैल गया।

अतः संक्षेप में स्वामी विवेकानन्द, भारतीय-इतिहास की पूर्व सहस्राब्दी में महानतम महापुरुष थे। उन्होंने भारतवासियों को इतिहास की ओर देखने की दृष्टि प्रदान की। वे भारत के आगामी राष्ट्र-जागरण तथा राष्ट्रीय संग्राम के मार्गदर्शक थे। उन्होंने परतन्त्रता के काल में भी विश्व में हिंदुत्व की महानता तथा प्रतिष्ठा स्थापित की। उन्होंने हिंदू-समाज को जाग्रत् किया तथा भारत को पुनः एक सबल, सशक्त, सुसम्पन्न तथा वैभवशाली बनाने की प्रेरणा दी। निःसन्देह मुख्यतः 19वीं शताब्दी में किसी भी क्षेत्र में स्वामी विवेकानन्द-सरीखा युगद्रष्टा न हुआ, जिसका देश-विदेश में इतना प्रभाव पड़ा हो। स्वामी जी के जीवन के त्याग की कसौटी निम्न पंक्तियों से आँकी जा सकती है जो महाभारत में अनेक बार उद्धृत है—

'त्यजदेकं कुलंस्यार्थे ग्रामंस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ।।'[3]

अर्थात्, गाँव की भलाई के लिए, मनुष्य अपने कुल को छोड़ दे
देश की भलाई के लिए, मनुष्य अपना गाँव छोड़ दे।
मानव-समाज की भलाई के लिए, मनुष्य अपना देश छोड़ दे।
विश्व की भलाई के लिए, मनुष्य अपना सर्वस्य छोड़ दे।[4]

स्वामी विवेकानन्द का देश के सभी युवकों के लिए उद्घोष तथा आह्वान था—

'उत्तिष्ठत ! जाग्रत' !!

1. अद्वैत आश्रम, *'विवेकानन्द : हिज़ कॉल टू द नेशन'* (कोलकाता, 2005), पेज़ 15
2. गोडविन के जीवन के विस्तार के लिए देखें स्वामी तथागतानन्द, पूर्वोद्धृत, पृ० 253-259
3. *महाभारत,* आदिपर्व, 80.17 ; आदिपर्व, 114.38-39 इत्यादि (गीताप्रेस-संस्करण)
4. *'विवेकानन्द-साहित्य'*, भाग 3, पृ० 241

स्वामी विवेकानन्द को आदरांजलि[1]

हे ज्ञान-ज्योति !

भारत के रोग का सुस्पष्ट निदानकर अभ्युदय का मार्ग बतानेवाले हिंदू-समाज के वैभव-प्रासाद की नींव, धर्म, संस्कृति, उसका एकात्मबोधक तत्त्वज्ञान ही हो सकता है, आर्थिक या राजनैतिक सूत्रबन्धन केवल नहीं— इस सत्य की घोषणा करनेवाले, तमोगुण व्याप्त अतएव अकर्मण्य एवं प्रमत्त हिंदू-समाज को सन्मार्ग प्रदर्शनकर तेजस्वी कर्मयोग का सन्देश सुनानेवाले, उच्चनीचतादि भेदभावों में विध्वंसक, व्यक्तिमात्र में नारायण का दर्शनकर उसकी सेवा करने का आदेश प्रदान करनेवाले महाविभूति !

भारत की पराधीन अवस्था में भी संसारभर उसके तत्त्वज्ञान का जय-जयकार करवानेवाले जगद्गुरो !

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परकीयों का अंध अनुकरणकर अपनी बुद्धि का खोखलापन, हीनता, दासता प्रकटकर भारत को अभारतीय जड़वाद की ओर ले जानेवाले मूढ़ हिंदुओं के तथाकथित नेताओं के नेत्रों में स्वाभिमान का प्रखर अंजन डालकर उन्हें जगानेवाले—

भारत ही संसार का परमगुरु है- इस सत्य को सिद्ध करनेवाले हे विश्ववंद्य महात्मन् !

आज फिर से परानुकरण एवं अधार्मिकता के पथ पर चलनेवाले, मानव से पशुत्व प्राप्त करनेवाले चारों ओर फैल रहे हैं। आज आपका पुण्य स्मरणकर आपसे हम धर्म और सन्मार्ग का पथ-प्रदर्शन चाहते हैं।

1. दिनांक 10 जनवरी, 1950 को स्वामी विवेकानन्द के जन्म-दिवस पर उनकी पावन स्मृति को प०पू० श्री गुरुजी द्वारा समर्पित शब्द-सुमनांजलि, *'श्रीगुरुजी : समग्र दर्शन'*, खण्ड 3, पृ० 85-86 में संकलित

आपके आशीर्वाद से आज के अज्ञानशून्य अवगुणों को नष्टकर, भेदरहित सूत्रबद्ध हिंदू-समाज प्रबल एवं स्वाभिमानपूर्ण होकर अपने महान् सांस्कृतिक गुणों का पुनरुज्जीवनकर प्रत्येक व्यक्ति को सुखपूर्ण जीवन प्राप्त करा देता हुआ संसार के सम्मुख स्पर्धाशून्य शान्तिमय समाजजीवन का आदर्श खड़ा कर सकेगा।

इस उद्दिष्ट को पाने के लिए हम आपके उपासक यही वरदान माँगते हैं कि हमारा सम्पूर्ण जीवन इस महान् उत्थान-कार्य में व्यतीत हो, मार्ग में आनेवाले कष्ट भी सुखदायी हो सकें— ऐसी हममें लगन हो और जिस भारतमाता का आपने जग में सन्मान बढ़ाया, उसकी सेवा में हमलोगों का जीवन समर्पित हो।

प्रभु! आपके स्मृतिदिवस के अवसर पर ये कुछ शब्दपुष्प-रूखे-सूखे जैसे ही हों, अर्पण कर रहा हूँ। यह अल्पपूजा स्वीकृत हो।